

बही धारा तसव्वुफ की .....

# बिहार में सूक्ष्मी आंदोलन



बही धारा तसव्वुफ़ की .....

# बिहार में सूफ़ी आंदोलन

शोध एवं लेखन  
डॉ. अभय कुमार पाण्डेय

प्रकाशक



पूर्वांचल लोक उत्थान एवं शोध परिषद्



213 एम.आई.जी. हनुमान नगर, कंकड़बाग, पटना-20

कला संस्कृति एवं युवा विभाग, बिहार सरकार, पटना  
के वित्तीय सहयोग से शोध एवं प्रकाशन

- **पुस्तक का नाम :** बिहार में सूफी आन्दोलन
- **प्रकाशक :** पूर्वांचल लोक उत्थान एवं शोध परिषद्  
213 एम.आई.जी. हनुमान नगर, पटना-20
- **लेखक :** डॉ० अभय कुमार पाण्डेय
- **वित्तीय सहयोग :** कला संस्कृति एवं युवा विभाग  
बिहार सरकार, पटना
- **© सर्वाधिकार :** पूर्वांचल लोक उत्थान एवं शोध परिषद्,  
कला संस्कृति एवं युवा विभाग, बिहार सरकार
- **प्रकाशन वर्ष :** 2020
- **मुद्रक :** प्रिंट प्राइम, अशोक राजपथ, पटना-4
- **मुद्रण प्रति :** 1000
- **मूल्य :** ₹ 300/-

## शुभकामना



प्रेमोद कुमार

(प्रमोद कुमार)

माननीय मंत्री  
कला, संस्कृति एवं युवा विभाग  
बिहार सरकार, बिहार, पटना

मैं अपने माननीय मुख्यमंत्री श्री नीतीश कुमार एवं माननीय उपमुख्यमंत्री श्री सुशील कुमार मोदी के प्रति कृतज्ञ हूँ कि उनके नेतृत्व में बिहार न सिर्फ विकास के चहुमुखी आयाम को सुनिश्चित कर रहा है, बल्कि सामाजिक एवं साम्प्रदायिक सद्भाव को भी शिखर प्रदान किया गया है। ‘बिहार में सूफी आन्दोलन’ के विषय पर शोध-कार्य किया जाना और उसका एक पुस्तक के रूप में प्रकाशन एक महत्वपूर्ण बात है। इतिहास में सूफी सन्तों ने सामाजिक-साम्प्रदायिक सौहार्द एवं जन-कल्याण के लिये अविस्मरणीय कार्य किया और आज भी इनके मजार साम्प्रदायिक एवं सामाजिक सम्मेलन के लोकप्रिय केन्द्र हैं।

बिहार की पुण्य-भूमि ने सूफी आन्दोलन या सिलसिला को ऐतिहासिक रूप से उर्वरक भूमि प्रदान की है, और आज की तारीख में बिहार का शायद ही कोई शहर, कस्बा या प्रखण्ड हो जहां किसी नामचीन या गुमनाम सूफी संत के मजार न हो। मुस्लिम हों या हिन्दू, अमीर हों या गरीब, उच्च जाति का हों या निम्न जाति के, ये सूफी मजार सभी के लिये समान रूप से आस्था का केन्द्र रहे हैं। आज भी बिहार के सभी संतों के मजार पर होने वाले वार्षिक उर्स सामाजिक एवं साम्प्रदायिक सम्मेलन व सद्भाव का अद्भुत नजारा प्रस्तुत करते हैं।

यह पुस्तक एक सार्थक एवं उपयोगी आयाम प्रस्तुत करता है। कला, संस्कृति एवं युवा विभाग, बिहार सरकार की तरफ से “बिहार में सूफी आन्दोलन” पुस्तक के सफलता हेतु सम्पादक मंडल को हार्दिक शुभकामनायें प्रेषित।

## संदेश



रवि नरनायण परमार  
(रवि नरनायण परमार)

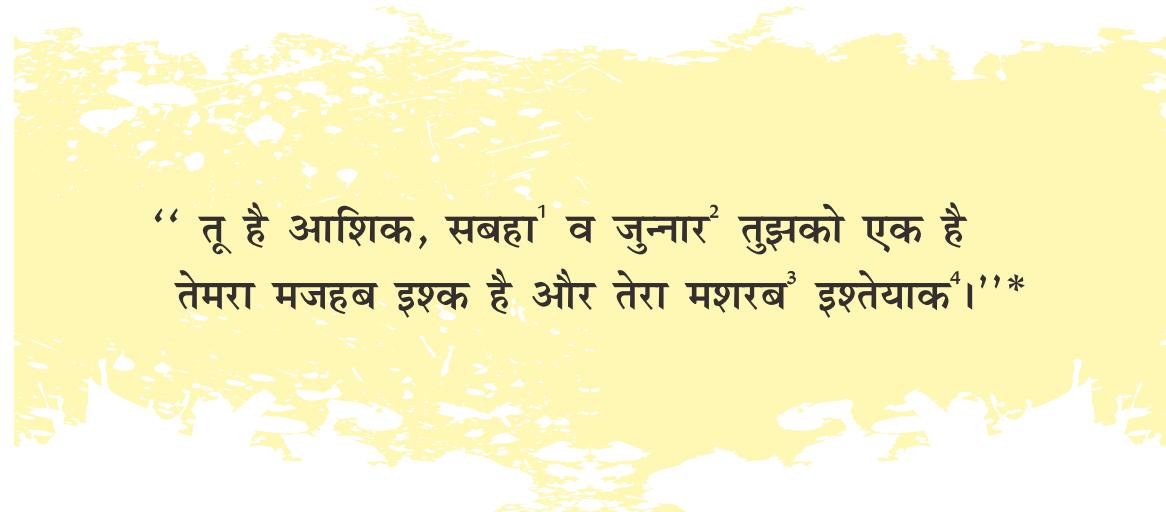
प्रधान सचिव  
कला, संस्कृति एवं युवा विभाग  
बिहार सरकार, बिहार, पटना

एशिया महाद्वीप में सूफी परम्परा का उदय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी। सूफियों ने माना कि ईश्वर या खुदा एक है और सभी मनुष्य उसके बन्दे हैं। इसलिये उन्होंने बिना किसी धर्म, जाति या सम्प्रदाय का प्रवाह किये बगैर तसव्वुफ की चांदनी बिखेरी और ईश्वरीय अनुराग व रहस्यवाद को तवज्जो दिया। कहते हैं कि कुरान के उपदेशों की उदारवादी व्याख्या है तरीकत, और यह तरीकत ही सूफी मत का आधार बना।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में जब दो समृद्ध सभ्यताएँ इस्लाम और हिन्दू प्रत्यक्ष सम्पर्क में आई तो एक समन्वित संस्कृति जिसे 'हिन्द-इस्लामी संस्कृति' के नाम से जाना जाता है, क्रमिक विकास हुआ। सूफियों ने इस समन्वित संस्कृति को एक स्वरूप प्रदान करने, क्रमबद्ध जारी रखने तथा जन-सामान्य के बीच लोकप्रिय बनाने में अपनी ऐतिहासिक भूमिका अदा की। भाषा और साहित्य के क्षेत्र में सूफियों का योगदान अविस्मरणीय है। सूफियों के खानकाहों में ही उर्दू भाषा का जन्म हुआ। इसके अतिरिक्त, पंजाबी, गुजराती, हिन्दी आदि जैसे देशज भाषा एवं साहित्य के विकास में सूफी संतों की भूमिका अत्यंत ही महत्वपूर्ण रही। इसी प्रकार हिन्दुस्तानी, संगीत एवं वाद्य यंत्रों के विकास में भी इनका योगदान उल्लेखनीय रहा।

बिहारी समाज ने सूफी आन्दोलन के लिये उर्वरक भूमि प्रदान की और सूफी संतों ने भी बिहारी समाज पर अपनी अमिट छाप छोड़ी। बिहार के शहरों, कस्बों, प्रखण्डों में मौजूद सूफी संतों के मजार और इन मजारों के प्रति धर्म, जाति व सम्प्रदाय से निरपेक्ष व्यापक जनास्था इस बात का गवाह है कि बिहारी समाज ने आज तक इस सिलसिला को जारी रखा है। प्रस्तुत पुस्तक 'बिहार में सूफी आन्दोलन', बिहारी समाज एवं लोकतंत्र की मजबूती के लिये एक अत्यंत ही सार्थक साधन के रूप में भूमिका अदा करेगा।

बिहार के सूफी आन्दोलन को समर्पित-

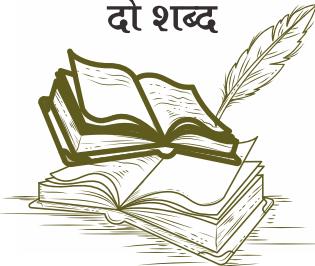


“तू है आशिक, सबहा<sup>1</sup> व जुन्नार<sup>2</sup> तुझको एक है  
तेमरा मजहब इश्क है और तेरा मशरब<sup>3</sup> इश्तेयाक<sup>4</sup>।”\*

\* सूफी हफीजउद्दीन लतीफी की पंक्ति, उल्लाही चिश्ती निमाजी द्वारा मूल फारसी से अनूदित ।

1. मदिरा, 2. ब्रह्म-सूत्र, 3. धर्म, 4. उत्सुकता ।

## दो शब्द



यह सर्वविदित है कि वक्त के थपेड़ों ने बिहारी समाज की सामुदायिकता एवं समन्वित संस्कृति की जड़ों को उत्तरोत्तर कमजोर किया है। हिन्दू-मुस्लिम सद्भाव की समन्वित-संस्कृति कमजोर हुई है। जेम्स मिल (हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इण्डिया) के समय से ही भारतीय इतिहास का साम्प्रदायिक लेखन भी चाहे या अनचाहे किया जाता रहा, जिसने भारतीय जनमानस की अस्वास्थ्यकर संरचना को खड़ा किया। इसके अतिरिक्त भाषा के स्तर पर भी साम्प्रदायिक सद्भाव की कड़ी को उत्तरोत्तर कमजोर किया गया। जिस ‘हिन्दवी’ का जन्म सूफियों की खानकाहों में हुआ और जिसे ‘उर्दू’ की सगी बहन के रूप में यात्रा करनी थी, उसे उत्तरोत्तर संस्कृतनिष्ठ बनाने की मजबूत कोशिशें हुईं। इसके साथ ही विभिन्न स्तरों पर साम्प्रदायिक सौहार्द की संस्कृति पर क्रमबद्ध कुठाराघात किया गया। किन्तु बहुत कुछ टूटने बिखरने के बावजूद ऐसी बहुत सारी कढ़ियाँ बिहारी समाज में मौजूद रहीं हैं जिन्होंने सामुदायिक एवं साम्प्रदायिक सद्भाव की संस्कृति को सक्रिय एवं अस्तित्वमान बनाए रखा। इन कढ़ियों के सबसे मजबूत अंश सूफी संतों के दरगाह/मजार रहे हैं, जो हिन्दू-मुस्लिम सद्भाव की संस्कृति को बनाये बचाये रखने में मील के पथर की तरह खड़े रहे।

बिहार में सबसे पहले आकर बसनेवाले सूफी संत संभवतः इमाम ताजफकीह थे। वे बिहार में बछित्यार खिल्जी के आगमन के पूर्व ही पटना के समीप मनेर में आकर बस गये थे। इसके अलावा बिहार में बसने वाले प्रारम्भिक सूफी संतों में जेथुली (पटना) के शहाबुद्दीन जगजोत, हाजीपुर

(वैशाली) के सैयद इब्राहिम चिश्ती तथा दक्षिण बिहार में शेख अली का नाम उल्लेखनीय है। बिहार में कादरी, चिश्ती, मदारी, सुहारवर्दी, फिरदौसी आदि सिलसिले के सूफी सक्रिय रहे किन्तु सर्वाधिक लोकप्रियता फिरदौसी सिलसिले को मिली। फिरदौसी सिलसिले के सर्वश्रेष्ठ संत मखदूम शरफुद्दीन यहया मनेरी थे। इनका जन्म 1290 ई. में मनेर शरीफ में हुआ था और मृत्यु बिहार शरीफ में। इन सूफियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से सामाजिक जीवन में सम्मिश्रण एवं बन्धुत्व को बल मिला और कालान्तर में एक समन्वित संस्कृति का विकास बिहारी समाज में हुआ।

प्रो. इस्तियाज अहमद के अनुसार, सूफी मत इस्लाम में रहस्यवादी विचारों एवं उदार प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करता है। यह माना जाता है कि सूफी मत का मूल आधार इस्लाम में ही निहित है। कहा जा सकता है कि कुरान के उपदेशों की रूढ़िवादी व्याख्या ‘शरीयत’ है और उसकी उदार व्याख्या ‘तरीकत’, जो सूफी मत का आधार है। संसार से विरक्ति, एकान्तमय जीवन और ईश्वर के प्रति अनुराग सूफी-आचरण का मुख्य आधार रहा है। धीरे-धीरे सूफियों पर ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म, हिन्दू धर्म आदि का प्रभाव पड़ा जिससे सूफीवाद का स्वतन्त्र रूप और अधिक विकसित हुआ। समग्र रूप में सूफी मत ने मध्यकालीन इतिहास के नक्शे पर तसव्वुफ की चांदनी बिखेरी और यह सिलसिला आज तक सूफी मजारों के माध्यम से जारी है।

डा. अमर कुमार पाण्डेय  
(शोध एवं परियोजना प्रभारी)  
03-03-2019, पटना (बिहार)

## विषय-सूची

<b>बही धारा तसव्युफ की : सूफी मत का स्वरूप एवं विस्तार</b>	<b>01 - 14</b>	<b>76 - 78</b>
<b>बिहार में सूफी सिलसिला : परिप्रेक्ष्य एवं संदर्भ</b>	<b>15 - 30</b>	
<b>बिहार के जनप्रिय सूफी संत : जिलावार विवरण</b>	<b>31 - 108</b>	<b>79 - 81</b>
<b>1. पटना</b> अजीमाबाद, मनेर शरीफ, जेटूली, दानापुर, फुलवारी शरीफ	<b>32 - 49</b>	
<b>2. नालन्दा</b> बिहार शरीफ तथा कुछ अन्य	<b>50 - 54</b>	<b>82 - 84</b>
<b>3. वैशाली</b> हाजीपुर, जन्दाहा	<b>55 - 57</b>	<b>85 - 86</b>
<b>4. सिवान</b>	<b>58 - 59</b>	<b>87 - 87</b>
<b>5. छपरा</b>	<b>60 - 61</b>	
<b>6. गोपालगंज</b>	<b>62 - 62</b>	
<b>7. औरंगाबाद</b> अमझर शरीफ, दाऊद नगर, मनौरा शरीफ	<b>63 - 67</b>	
<b>8. गया</b> गया, मानपुर, बीथो शरीफ	<b>68 - 70</b>	<b>88 - 92</b>
<b>9. जहानाबाद</b> काको, अमथुआ शरीफ, पिंजोरा	<b>71 - 72</b>	<b>93 - 95</b>
<b>10. भोजपुर</b> बिहिया, आरा	<b>73 - 74</b>	<b>96 - 96</b>
<b>11. बक्सर</b> किला मैदान, चौसा	<b>75 - 75</b>	
<b>12. रोहतास</b> ताराचण्डी, सासाराम		
<b>13. चम्पारण</b> पूर्वी चम्पारण एवं पश्चिमी चम्पारण		
<b>14. मुजफ्फरपुर</b> पुराना बाजार, चतुर्भुज स्थान, गोरयारा		
<b>15. दरभंगा</b>		
<b>16. मधुबनी</b> झंझारपुर		
<b>17. भागलपुर</b>		
<b>18. मुंगेर</b>		
<b>19. बेगुसराय</b> बलिया		
<b>20. खगड़िया</b>		
<b>21. पूर्णिया</b> पूर्णिया, बेयसी		
<b>22. कटिहार</b> बारसोई, मनिहारी		<b>101 - 103</b>
<b>23. नवादा</b> एन.एच.-31, काशीचक, हिसुआ		<b>104 - 105</b>
<b>24. समस्तीपुर</b>		<b>106 - 107</b>



बही धारा तसव्युफ़ की :  
सूफ़ी मत का रूप एवं विस्तार





सांस्कृतिक उपलब्धियों के दृष्टिकोण से भारतीय इतिहास का मध्य-युग अत्यन्त ही महत्वपूर्ण काल है। इस युग में हिन्दू और इस्लाम दो महान् व समृद्ध सभ्यताएँ एक-दूसरे के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आई और स्वाभाविक रूप से दोनों ने एक-दूसरे को गहरे रूप में प्रभावित किया। इससे एक नई समन्वित परम्परा का विकास क्रमिक रूप से हुआ जिसे 'हिन्द-इस्लामी संस्कृति' का नाम देते हैं। इस समन्वित परम्परा के उदाहरण विभिन्न क्षेत्रों में देखे जा सकते हैं। धार्मिक एवं वैचारिक जीवन के क्षेत्र में इसका उदाहरण भक्ति आन्दोलन और सूफी सिलसिला या आन्दोलन के रूप में देखा जा सकता है। सूफी सन्तों एवं सामान्य जन के बीच व्यापक सम्पर्क ने इन दो समृद्ध सांस्कृतिक परम्पराओं के बीच आदान-प्रदान को बढ़ावा दिया, सहज बनाया।

यों तो भारत में सूफियों का आगमन तुर्क आक्रमणों के काल से आरम्भ होता है किन्तु इस मत व सिलसिला का इतिहास 8वीं-9वीं सदी के अरब से प्रारंभ होता है। सूफी लोग प्रारंभ में आठवीं और नवीं शताब्दी में अरब में दिखलाई पड़े और काफी समय तक उनकी पहचान उनके ऊनी लिबासों से की जाती रही। 'सफ' का अर्थ है ऊन या बकरी या भेड़ के बाल का ऊनी कपड़ा। अतः जो सफ के बने वस्त्र को पहनता था वही सूफी कहलाया। कुछ विद्वान् 'सफा' से सूफी शब्द की उत्पत्ति मानते हैं। 'सफा' का अर्थ है—'पवित्रता' या 'विशुद्धता' अर्थात् जो लोग आचार-विचार से पवित्र थे वे सूफी कहलाए। विद्वानों के एक वर्ग का मत यह भी है कि मदीना में मुहम्मद साहब द्वारा बनवाई गई, मस्जिद के बाहर सफा अर्थात् मक्का की एक पहाड़ी पर जिन व्यक्तियों ने शरण ली तथा खुदा की आराधना में लीन रहे वे सूफी कहलाए। जो भी हो, यह सच है कि 'साधक' के लिए सूफी शब्द का प्रयोग इसा की नवीं शताब्दी से प्रचलित होने का प्रमाण मिलता है। ये सूफिया सूफीमनिश होते थे अर्थात् किसी भी धर्म या व्यक्ति से बैर न रखने वाले। वैसे भी 'सूफी' वही कहलाता है जो तसव्वुफ का अनुयायी और सारे धर्मों से प्रेम करनेवाला होता है। इस्लाम में सूफी मत का विकास किसी धर्म में होनेवाले रहस्यवादी आन्दोलन की सफलता तथा लोकप्रियता का महत्वपूर्ण एवं दिलचस्प इतिहास है। सूफी संतों को ब्रह्मज्ञानी तथा अध्यात्मवादी माना जाता रहा है।

जिस प्रकार भारत में हिन्दू समाज के अन्दर भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात हुआ उसी प्रकार अरब में समानान्तर सूफीमत का बीजारोपण मुसलिम मानस में हुआ - बाह्य प्रभावों से उत्पन्न विधि-विधानों एवं आडम्बरों के विरुद्ध एक प्रचंड आवाज की शक्ति में। मुहम्मद साहब की मृत्यु के बाद राजनीतिक,

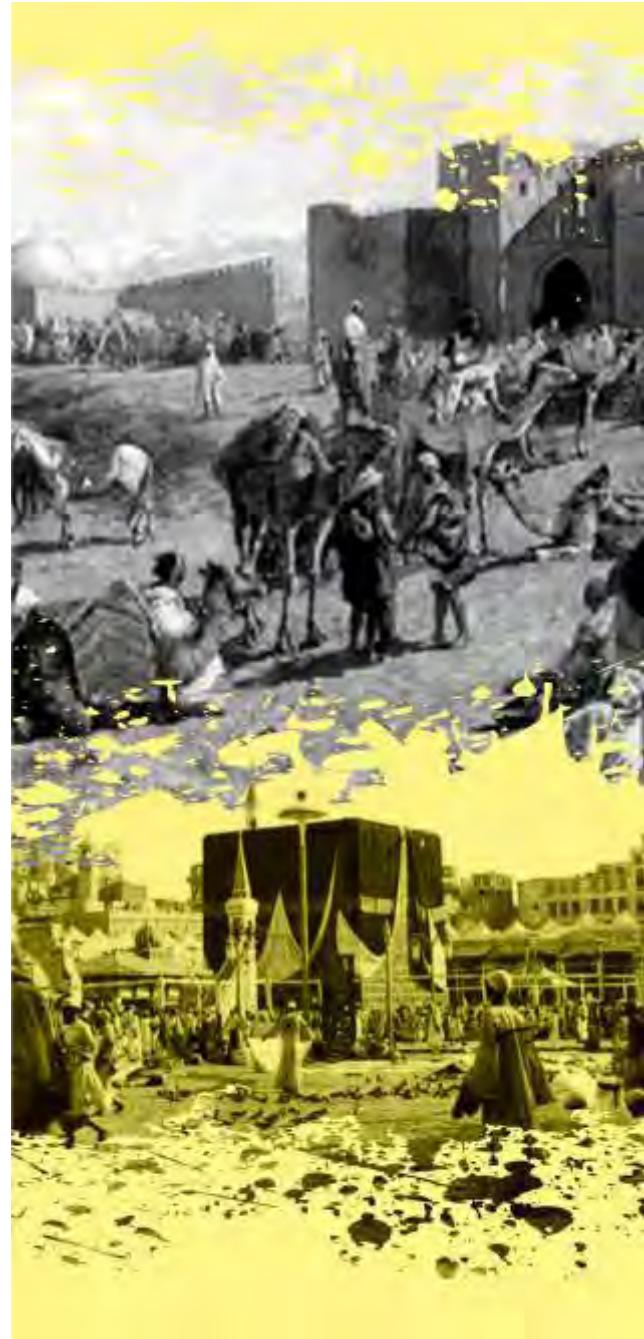
सामाजिक एवं बौद्धिक परिस्थितियों ने तत्कालीन वातावरण पर ऐसा प्रभाव डाला कि रहस्य-तत्व के चिन्तन की ओर मानव उन्मुख हो गया।

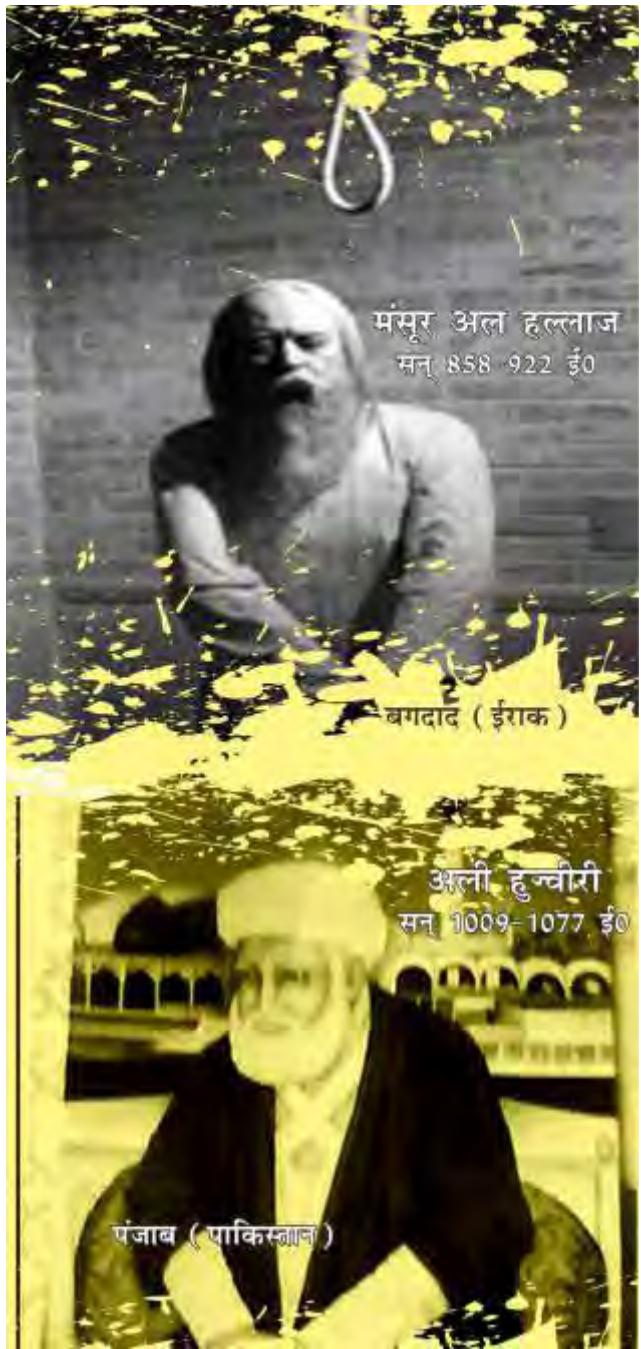
सूफीवाद का उद्भव इस्लाम को प्राप्त होने वाली राजनीतिक सफलता का प्रत्यक्ष परिणाम था। तथ्यों की छानबीन करने पर ज्ञात होता है कि सूफीमत के विकास में ईरान का बड़ा हाथ था। आरबेरी ने लिखा है, “वास्तव में इस्लाम का जो पौधा ईरान में लगा था वही सूफीमत के रूप में विकसित एवं फलित हुआ।” अरबों ने तो इस्लाम के प्रदेश को ही जीता था किन्तु ईरान ने अरब की संस्कृति पर विजय पाई थी। कुछ समय बाद इस्लाम की दो शाखाएँ स्पष्ट रूप में पृथक् दिखाई देने लगीं। अरब में जन्मी इस्लामी ‘शरीअत’ और ईरान के सूफीमत की ‘तरीकत’। इन दो धाराओं की भिन्नता को आसानी से समझा जा सकता है।

**सूफीवाद मूलतः** दार्शनिक व्यवस्था पर टिका था। इस दार्शनिक व्यवस्था के कारण ही सूफीवाद ने इस्लाम की कट्टरता को तिलांजलि देकर रहस्यवाद की आंतरिक गहराई से समझौता कर लिया। जिस प्रकार धार्मिक विचारकों ने कुरान तथा इज्मा के आधार पर अपने सिद्धान्तों की व्यवस्था दी है उसी प्रकार सूफियों ने भी अपना रास्ता कुरान तथा सुन्नत के भीतर से ही निकाला है परन्तु उनके मार्ग व दिशा (तरीकात) हमेशा शरीअत से मेल नहीं खाते। उन्होंने रहस्यवाद और वैराग्य को रूढ़िवादी विद्या के विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया।

सूफी दार्शनिक किसी नए धर्म को स्थापित नहीं कर रहे थे, अपितु एक नवीन आंदोलन की भूमिका तैयार कर रहे थे जिसके अन्तर्गत उन्हें इस्लामी ढाँचे को साथ मिलाकर नए प्रकार की आस्था को ही प्रतिष्ठित करना था। अपने लक्ष्य के औचित्य को सिद्ध करते हुए उन्होंने कुरान की नए ढंग से व्याख्या की तथा उसमें ऐसे अनेक आधारों को पाया जिनसे उनके रहस्यपरक विश्वास को पूरा बल मिला। वास्तव में, रहस्यवाद के बीज कुरान में ही विद्यमान थे। मुहम्मद साहब के जीवन के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि वे संसार से विरक्त होकर प्रायः गहन चिन्तन-मनन में मग्न हो जाया करते थे।

आरंभिक सूफी ईश्वर-प्रेम में मग्न रहते थे। सूफी-चिन्तक इस्लाम का अनुसरण तो करते थे परन्तु वे कर्मकांड के विरोधी थे। उनमें धीरे-धीरे स्वतन्त्र विचारधारा का विकास हुआ। परिणाम यह हुआ है कि इस्लाम की शिक्षाओं को वे अपने अनुभव और तर्क की कसौटी पर कसने लगे। इसी बीच बसरा एक





महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थान बन गया, जहाँ भिन्न-भिन्न स्थानों के सूफी आकर अपने रहस्यों की चर्चा करने लगे। मंसूर हल्लाज (858-922 ई.) प्रथम साधक था जिसने अपने को 'अनलहक' घोषित किया और प्राण न्यौछावर कर दिया। परवर्ती कालों में मंसूर सूफी विचारधारा का प्रतीक बन गया। अल गजाली ने सूफीमत को मुसलिम जगत् में सम्मानीय स्थान प्राप्त कराया और उसी के चिह्नों पर जलालुद्दीन रूमी और फरीदुद्दीन अत्तार ने सूफीमत को आरोपें और उलेमा के अत्याचारों से मुक्त किया। इब्नुल अरबी प्रथम व्यक्ति था जिसने सूफीजगत में महत्वपूर्ण वहदत-उल-वुजूद का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। इस सिद्धान्त का सारांश यह है कि भगवान् सर्वव्यापक है और सबमें उसकी झलक है। उससे कुछ भी अलग नहीं है। सभी मनुष्य समान हैं। इस प्रकार इब्नुल अरबी ने अपनी वाक़्शक्ति और लेखनी द्वारा इस मत के विकास में जो महत्वपूर्ण योग दिया है, वह सूफी मत के इतिहास में सदैव चिरस्मरणीय बना रहा रहा और रहेगा।

सूफियों द्वारा प्रतिपादित रहस्यवाद एवं प्रेम-तत्व की चर्चा करते हुए हम पाते हैं कि सूफीमत का इस्लाम से अनेक मुद्दों पर गहरा मतभेद रहा है। लेकिन दिलचस्प बात यह है कि प्रायः सभी सूफी मुसलमान थे और साथ ही वे अपने सिद्धान्तों का विवेचन करते समय इस्लाम को अपनी आँखों से ओङ्कार नहीं होने देते थे। जहाँ कहीं ऐसा लगता कि उनके कथन अथवा आचरण के साथ इस्लाम का मेल नहीं खाता है वहाँ वे कुरान या हडीस का सहारा लेते। यद्यपि अपने स्वतन्त्र विचारों का इजहार करते समय उन्हें कष्ट तथा यातनाएँ झेलनी पड़ी तथापि वे अपने कार्य में पीछे नहीं हटे। रुढ़िवादी इस्लाम की कट्टरता और कानून की पाबंदी को दरकिनार करना प्रायः आसान नहीं था क्योंकि सूफी अक्षरवाद पर उतना जोर नहीं देते थे जितना कि आध्यात्मिक और रहस्यवादी व्याख्या पर।

धीरे-धीरे सूफियों पर ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्म के वेदांत दर्शन का भी प्रभाव पड़ा जिससे सूफीवाद का स्वतंत्र रूप और अधिक विकसित हुआ। प्रो. ताराचन्द के शब्दों में सूफी मत एक ऐसे महासागर के समान है जिसमें अनेक नदियाँ आकर विलीन हुईं और प्रत्येक ने अपना-अपना प्रभाव छोड़ा है। ईसाइयों से खानकाहों का संगठन, बौद्ध धर्म से एकान्तमय जीवन एवं दरिद्रता तथा हिन्दू धर्म से आत्मा व परमात्मा के बीच सम्बन्धों पर व्यक्त विचार, सूफी मत पर पड़े प्रभाव के स्पष्ट उदाहरणों के रूप में देखे जा सकते हैं।

पश्चिम व मध्य एशियाई देशों में विकसित होता हुआ सूफीमत भारत आया। भारत में आने से पूर्व बारहवीं शताब्दी तक सूफीमत का रूप निर्धारित हो चुका था। इसके मौलिक तथा नैतिक सिद्धान्त, उपदेश और आदेश, प्रार्थना और उपवास, जिक्र, शेख या पीर एवं शिष्य की परंपरा तथा खानकाहों की विशेष दिनचर्या निश्चित हो चुकी थी। अनेक सूफी सिद्धान्तों को विभिन्न रहस्यवादी विचारधाराओं के द्वारा पुष्ट भी किया गया जिनका विकास अनेक युगों की साधना से किया गया था। यद्यपि सूफी आंदोलन का भारत में प्रवेश उसकी पूर्ण व्यवस्थापक स्थिति के स्थापित हो जाने के बाद हुआ था।

भारत में सूफियों का आगमन तुर्क आक्रमणों के काल से आरम्भ होता है। सूफी सन्तों में पहला महत्वपूर्ण नाम शेख अली हुज्वीरी अथवा दाता गंज बख्श का है जो महमूद के आक्रमणकाल में लाहौर में आकर बस गये थे। उनका प्रभाव बहुत विस्तृत क्षेत्र में नहीं पड़ा।

तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी में सूफी खानकाहों का जोर भारत के कई भागों में फैल रहा था। अफगानिस्तान के रास्ते अनेक सूफी सिलसिलों से संबंध रखने वाले लोग भारत में आए। ये लोग स्वेच्छा से ही भारत आए थे, किसी संस्था के आदेश पर नहीं। ईश्वर-प्रेम तथा मानव-सेवा उनका ध्येय था तथा उनका जीवन पवित्र था। उनके पवित्र आचरण ने भारत की जनता को शीघ्र ही अपनी ओर आकृष्ट कर लिया।

अबुल फजल ने 'आइने अकबरी' में चौदह सूफी सिलसिलों का उल्लेख किया है। इनमें चिश्ती, सुहारवर्दी, कादरी, शुत्तारी, मदारी और नक्शबंदी अत्यन्त महत्वपूर्ण रहे। सैय्यद मुहम्मद हाफिज के अनुसार चिश्ती भारत का सर्वप्रथम प्राचीन सूफी सिलसिला है। ख्वाजा मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह चिश्ती सन् 1192 ई. में शिहाबुद्दीन गोरी की सेना के साथ भारत में आए थे और बाद में उन्होंने ही 'चिश्तिया परंपरा' की नींव रखी। उन्होंने यहाँ आकर अनेक स्थानों का भ्रमण करने के बाद अजमेर को अपना स्थायी निवास स्थान बनाया। उनकी समाधि अजमेर में 'ख्वाजा साहब' के नाम से प्रसिद्ध दरगाह है। इनके अनेक अनुयायी बने जिनमें से बहुत सारे स्वयं प्रमुख सन्तों के रूप में जाने जाते हैं। इनमें दिल्ली के कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी तथा पंजाब के बाबा फरीद अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। ख्वाजा बख्तियार काकी सुल्तान इल्तुतमिश के समकालीन थे तथा उन्होंने ही बाबा फरीद को चिश्तिया-परंपरा में दीक्षित किया था। दिल्ली में बख्तियार काकी के अनेक मुरीद थे। स्वयं सुल्तान से लेकर दिल्ली के दरबारियों के बीच भी इनकी बड़ी प्रतिष्ठा



इब्न अरबी  
सन् 1165-1240 ई०



इब्न अरबी का मजार, घमासकस ( सीरिया )



थी। किन्तु फरीद ने जितनी गहन भक्ति से गुरुसेवा की थी वैसी सेवा और कोई न कर सका। बखित्यार काकी ने उन्हें अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। बाबा फरीद के कारण चिश्तीया सिलसिले को भारत में व्यापक लोकप्रियता प्राप्त हुई। फरीद ने अपना मुख्य कार्य क्षेत्र पंजाब को बनाया। उन्होंने भारतीय वातावरण से समझौता करते हुए खास तौर पर निम्न वर्गों, दीन-दुखियों के लिए प्यार और उदारता के द्वार खोल दिए। एक अन्य कारण यह भी था कि चिश्ती सिलसिला संगीत को ईश्वर प्रेम का महत्वपूर्ण साधन समझता था जबकि रूढ़िवादी इस्लाम में इसकी पाबंदी थी।

बाबा फरीद का भारतीय सूफीमत के इतिहास में विशिष्ट स्थान है। ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती ने भविष्यवाणी की थी कि वे एक ऐसे दीपक हैं जो चिश्ती सिलसिले को नया प्रकाश देंगे। यह सच बात है कि फरीद को अपने जीवनकाल में आध्यात्मिक और मानसिक शांति प्राप्त हुई थी तथा उन्होंने असंख्य पथभ्रष्ट और पद-दलित मनुष्यों को सत्य और आस्था का प्रकाश दिया था। उनका सबसे महत्वपूर्ण योगदान रचनाओं में है जो 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में सम्मिलित होकर विश्व के कोने-कोने में संदेश प्रसारित कर रहे हैं। फरीद की वाणी में समाज तथा राजनीति के कठु यथार्थ की प्रतिध्वनि देती है। मूलतः उन्होंने मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति का स्वर ही बुलंद किया है।

उनका मुख्य उद्देश्य मानव में सच्ची आध्यात्मिक भावना का विकास था क्योंकि एक सच्चे साधक की भाँति वे धृणा, हिंसा एवं बैर को त्यागकर सहानुभूति और पारस्परिक प्रेम का पाठ पढ़ाना चाहते थे। फरीद का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली, विनम्र, उदार तथा मधुर था। उन्होंने अपनी समस्त 'बानी' में किसी धर्म का खंडन नहीं किया है। उनका निरंतर यही प्रयास था कि व्यक्ति संसार की वास्तविक स्थिति को समझे और मानवता के प्रति अपने कर्तव्य को पहचाने। इसलिए उन्होंने बार-बार सांसारिक आकर्षणों की निन्दा की है। उनके आध्यात्मिक गुणों का ही प्रभाव है कि आज भी उनकी समाधि सभी के लिए तीर्थस्थान बनी हुई है। राजा हो या रंक, हजारों व्यक्ति दूर-दूर से आकर हर वर्ष यहाँ सिर झुकाते हैं। तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक जीवन को अपने व्यक्तित्व के बल पर प्रभावित करने वाले बाबा फरीद एक परम पवित्र तथा त्यागी साधक थे।

बाबा फरीद के प्रमुख शिष्यों में हजरत निजामुद्दीन औलिया तथा हजरत अलाउद्दीन साबिर महत्वपूर्ण हैं। शेष निजामुद्दीन के नेतृत्व में चिश्ती सिलसिले का भारत भर में विकास हुआ, यद्यपि

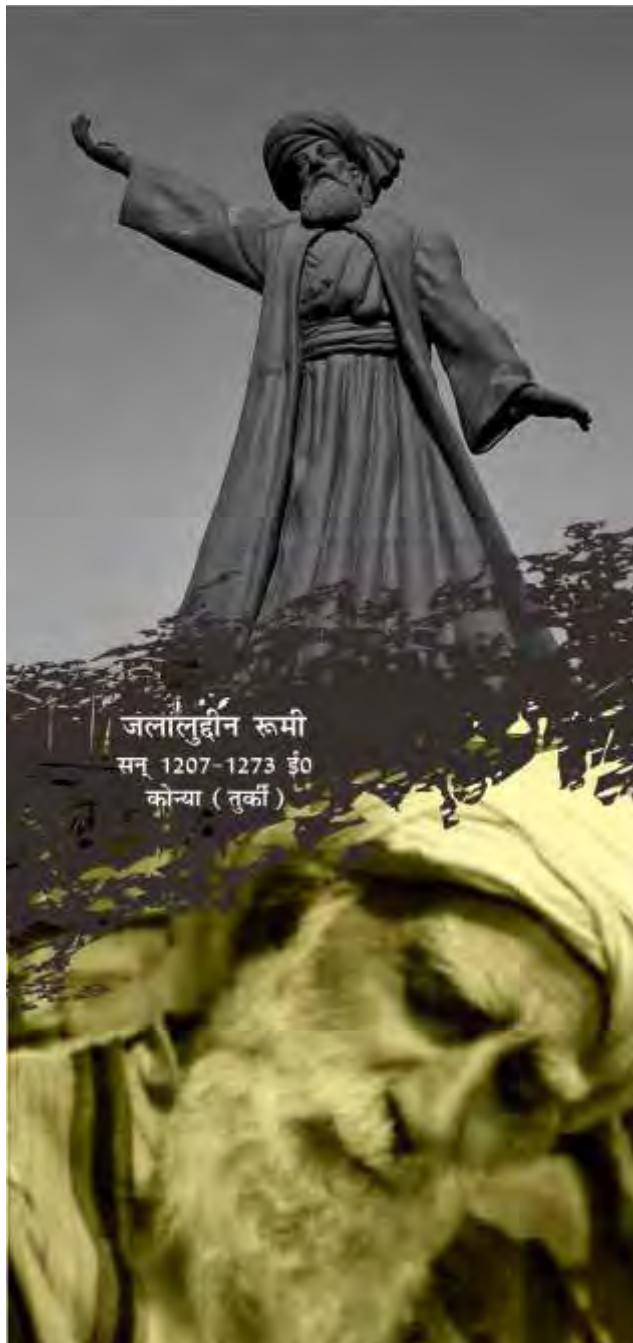
उनका मुख्य कार्यक्षेत्र दिल्ली था। उनकी लोकप्रियता का मुख्य कारण यही था कि एक विशेष धर्म के अनुयायी होते हुए भी उनमें धार्मिक और सामाजिक कट्टरता लेशमात्र भी नहीं थी। साथ ही उनकी विचारधारा में मानव-मात्र के लिए अनेक उपयोगी और कल्याणकारी तत्व विद्यमान थे। उन्होंने भारतीय परंपरा के उस अंश को ही ग्रहण किया था जो उनके अनुभव की कसौटी पर खरा उतरता था जिसमें समाज-सेवा और मानव-विकास की प्रेरणा ही प्रमुख थी। बाबा फरीद की तरह निजामुद्दीन औलिया ने भी अपने उपदेशों से मानव-हृदय को शान्ति प्रदान की। भारतीय समाज में आर्थिक बंधनों द्वारा ठुकराए हुए लोगों ने उनमें अपना परम हितैषी रूप पाया। हिन्दू-मुसलमानों की एकता एवं समाज-सुधार में उनका महत्वपूर्ण योगदान था।

करीब 50 वर्ष तक दिल्ली के शासकों के तौर-तरीकों से दूर रहकर वे जनसेवा में प्रवृत्त रहे थे। उनके शिष्यों में ऐसे अनेक सूफी साधक थे जिन्हें मुगलों के समय में अत्यधिक ख्याति प्राप्त हुई। सुप्रसिद्ध शेख सलीम चिश्ती को अकबर तथा जहांगीर से भी अत्यन्त सम्मान प्राप्त हुआ था। कहते हैं कि बादशाह अकबर एक आम फरियादी की तरह पैदल ही चलकर खानकाह पहुंचे और सूफी संत सलीम चिश्ती के आगे नतमस्तक होकर पुत्र प्राप्ति की फरियाद की। यह भारतीय इतिहास का कैसा अजूबा वक्त रहा होगा कि एक महान बादशाह एक फकीर के आगे नतमस्तक होकर दया व कृपा की भीख माँग रह था। बादशाह को पुत्र प्राप्ति हुई और उन्होंने उसका नाम सूफी संत के नाम पर सलीम रखा गया।

सुहरावर्दी सिलसिला का मुख्य केन्द्र मुलतान था और उसके प्रथम नेता सिन्ध में आकर बस गये। भारत में सुहरावर्दी सिलसिले को सुदृढ़ तथा लोकप्रिय बनाने का मुख्य श्रेय बहाउद्दीन जकारिया को है। बहाउद्दीन के नेतृत्व में इस सिलसिले ने प्रभावशाली कार्य किये और शीघ्र ही ख्याति प्राप्त कर ली। भारत में आगे चलकर इस सिलसिले के भीतर अनेक संत हुए जिन्होंने सिन्ध, गुजरात, बंगाल आदि प्रांतों में सूफी मत का प्रसार किया। इनमें जलालुद्दीन तबरीजी, सैयद सुर्खपोश, बुरहान आदि काफी प्रसिद्ध हुए। हैदराबाद और बीजापुर के राज्य भी इस सिलसिले के प्रभाव से अछूते न रहे। बाबा फखरुद्दीन ने पेनकोंडा के राजा और प्रजा दोनों को दीक्षित किया था। यद्यपि पन्द्रहवीं शताब्दी तक सुहरावर्दी सिलसिले का काफी विकास हुआ था तथापि लोकप्रियता में चिश्तिया सिलसिला ही आगे बना रहा। किन्तु चिश्तियों के विपरीत सुहरावर्दी सिलसिला राज-सहयोग एवं धन-संचय से अपने को दूर नहीं रख सका।

मध्यकालीन दक्षिणी ऐतिहासिक स्रोतों से यह ज्ञात होता है कि मुसलिम शासकों की विजय के पूर्व





जलालुद्दीन रूमी  
सन् 1207-1273 ई  
कोन्या (तुर्की)

ही दक्षिण भारत में सूफी संतों का आगमन हो चुका था और वे काफी हद तक जनता को प्रभावित भी कर रहे थे। प्रो. खालिक अहमद निजामी के विचार में, दक्षिण में चिश्ती सिलसिले की नींव शेख बुरहानुद्दीन ने रखी थी जो निजामुद्दीन औलिया के शिष्य थे। उन्होंने दौलताबाद को अपना स्थायी निवास स्थान बनाया था। इसी तरह हाजी रूमी ने बीजापुर में खानकाह स्थापित किया था। हालांकि शेख बुरहानुद्दीन और उनके समकालीन सूफी संतों और साथियों ने चिश्तीय सिलसिले की स्थापना की तथा दक्षिण भारत की जनता को चिश्ती परंपराओं से अवगत कराया, फिर भी यह कहना कठिन है कि किसी विशेष सूफी साधक को दक्षिण भारत में सूफीमत के प्रचार-प्रसार का श्रेय प्राप्त है।

शेख हुसैनी गेसूदराज के पहुँचने के बाद चिश्ती सिलसिले को दक्षिण में जो प्रोत्साहन तथा स्थायी महत्व मिला, वह बेजोड़ था। यह उन्हीं के प्रयत्नों का परिणाम था कि सूफीमत को एक पूर्ण विकसित सिलसिले का रूप मिला जैसे उत्तरी भारत में बाबा फरीद तथा औलिया जैसे संतों ने प्रदान किया। शेख गेसूदराज एक महान् साधक होने के साथ ही शरीअत और तरीकत के जाने-माने ज्ञाता थे तथा उन्हीं की कार्यशीलता से गुलबर्गा में इस्लामी ज्ञान के प्रसार के लिए एक विशाल मदरसा स्थापित हुआ। लगभग दो शताब्दियों में उनके नेतृत्व में गुलबर्गा चिश्ती सिलसिले का महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया। शायद वे पहले सूफी साधक थे जिन्होंने काफी हद तक अपने पूर्वजों के नक्शे-कदम पर दक्षिण के कई प्रांतों में सूफी साधना तथा मानवतावादी परंपराओं का प्रचार किया। किन्तु जिस समय चिश्ती सिलसिला लोकप्रियता के चरम शिखर पर था उनका देहांत हो गया। यह उनके प्रभाव का ही परिणाम था कि बहमनी के कई शासकों ने उदार नीतियों का अनुसरण किया। उन्होंने सामाजिक तथा पारस्परिक वैमनस्य को दूर करते हुए आपसी एकता पर जोर दिया। दक्षिण भारत और बीजापुर के सूफी खानकाह भी हर वर्ग के लिए खुले थे। कभी-कभार तो योगियों-सूफियों के बीच पारस्परिक वार्तालाप के भी प्रमाण मिलते हैं। निजामी के अनुसार संपूर्ण सूफी-आन्दोलन ने बहमनी राज्य को नैतिक शक्ति प्रदान करने का कार्य ही नहीं किया अपितु उनके उत्तराधिकारियों ने जनता के आध्यात्मिक एवं नैतिक विकास को पुष्ट करने के लिए सामाजिक विचारों के निर्माण का नया वातावरण भी निर्मित किया।

चूँकि खानकाह की दिनचर्या पीर पर ही निर्भर थी, ऐसी स्थिति में वे ही सिलसिले के संस्थापक होते थे या फिर उत्तराधिकारी नियुक्त करते थे। नवीन शिष्यों को दीक्षित करना तथा उन्हें ईश्वरीय ज्ञान प्रदान करना इन्हीं पर निर्भर था। पीर की शिष्य-परम्परा में दो प्रकार के मुरीद होते थे— एक तो वे जो

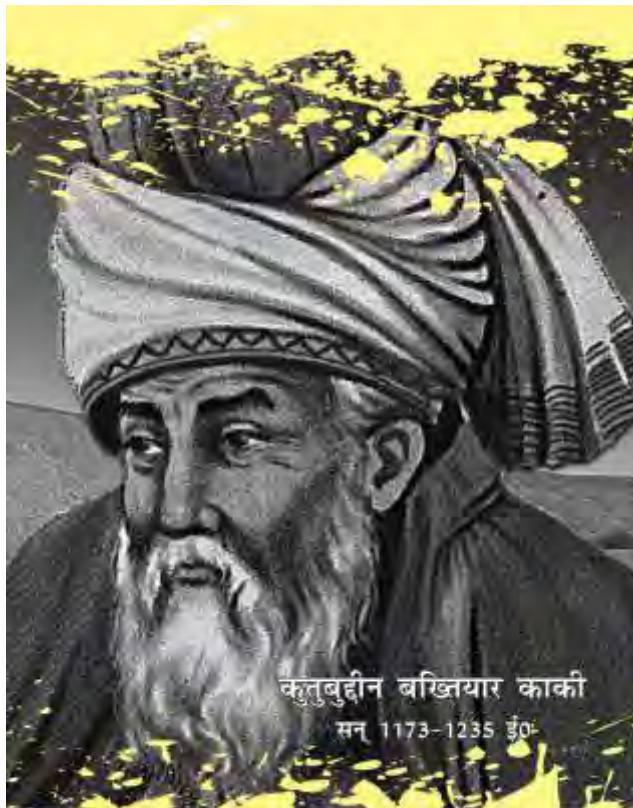
स्थान-स्थान पर जाकर निर्धनों के लिए भोजन, वस्त्र आदि एकत्र करते थे और दूसरे वे जो शांत वातावरण में एकांत एवं विरक्त जीवन बीताते थे। किन्तु शेष का प्यारा मुरीद वही होता था जो तौबा करके सांसारिकता का त्याग कर देता था, आध्यात्मिक ज्ञान तथा उपवास का अभ्यास करता था एवं शारीरिक और सांसारिक चिन्ताओं को छोड़कर आध्यात्मिक चिन्तन में ही तुष्टि प्राप्त करता था।

भारत में विभिन्न सूफी सिलसिलों की एक महत्वपूर्ण बात यह रही है कि उसमें आपस में कोई ईर्ष्या तथा मुकाबले की भावना नहीं थी। पारस्परिक आदर तथा समझौता उनका मुख्य आधार था। हिन्दुओं की तरह जाति-धेद में न पड़कर कोई भी मुसलमान किसी भी ‘सिलसिले’ में दीक्षित हो सकता था। इस कारण भी आध्यात्मिक एवं सामाजिक तौर पर पीरों का प्रभाव समान रूप से रहा। भारतवर्ष में दिल्ली, अजमेर, मुल्तान, सिन्ध, फतेहपुर सीकरी, बिहारी शरीफ, मनेर आदि अनेक स्थानों पर सूफी संतों के समाधि स्थान, विभिन्न लोगों से प्रतिष्ठा प्राप्त करते रहे।

इतिहासकारों ने समय-समय पर इस प्रश्न को बड़ी बारीकी से समझना चाहा है कि भक्ति-आनंदोलन पर इस्लाम अथवा सूफी विचारधारा का प्रभाव कहाँ तक पढ़ा। भारतीय इतिहासकारों के बीच यह बड़ा ही विवाद का विषय रहा है कि 15वीं-16वीं सदी में हिन्दुओं के बीच शुरू होने वाला सामाजिक-धार्मिक सुधार आनंदोलन, जो भक्ति आनंदोलन के नाम से जाना गया, इस्लाम या सूफी विचारधारा के आगमन से प्रभावित था या नहीं।

बहरहाल यह निश्चित रूप से कहना कठिन है कि भक्ति आनंदोलन इससे प्रभावित था या नहीं। फिर भी सूफियों के खानकाहों में नियमित रूप से संगीत सभाओं का आयोजन होता था, जिन्हें ‘समां’ कहते थे। इन समांओं में भक्ति भावनाओं से प्रेरित काव्य वाद्य यंत्रों के साथ गाये जाते थे। चूंकि सूफियों पर पहले भी ईरानी संगीत का प्रभाव था इसलिये भारत में इन संगीत समांओं के माध्यम से ईरानी राग-रागिनियों का विस्तार हुआ जिससे भारतीय संगीत प्रभावित हुआ। यह स्मरणीय है कि अमीर खुसरो मध्यकालीन भारतीय संगीत के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देने में सफल रहे। वे सूफी परम्परा से गंभीर रूप से प्रभावित थे। इन्होंने नयी राग-रागिनियों को लोकप्रिय बनाया और नये वाद्य यंत्र विकसित किये। आगे चलकर मोहम्मद ग्वालियरी ने भी संगीत को सम्पन्न बनाने में उल्लेखनीय योगदान दिया। कहा जाता है कि अकबर के प्रसिद्ध गायक तानसेन ने ईरानी संगीत की शिक्षा इन्हीं से प्राप्त की थी।





कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी  
सन् 1173-1235 ई०



कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी का मजार, दिल्ली

इसमें कोई संदेह नहीं है कि सूफियों और संतों में बहुत समानताएँ हैं, जैसे गुरु का महत्व नाम-स्मरण, प्रार्थना, ईश्वर के प्रति प्रेम, व्याकुलता एवं विरह की स्थिति, संसार की क्षणभंगुरता, जीवन की सरलता, सच्ची साधना, मानवता से प्रेम, ईश्वर की एकता तथा व्यापकता आदि सन्दर्भों में जुड़ा हुआ है जो दोनों आंदोलनों का आधार रहा है। सूफियों और निर्गुण संतों की आस्था धर्म तथा समाज के कर्मकांडों में न रहकर भावनात्मक एवं साधनात्मक रहस्यवाद में रही है। भक्ति-आंदोलन तथा सूफी-साधना दोनों ने ही ईश्वरीय प्रेम के द्वारा मानवता का पथ प्रशस्त किया है। संतों का मन निर्मल होता था और जो सिद्धान्त उन्हें अपने लक्ष्य की ओर ले जाने में उपयुक्त प्रतीत होते थे, उन्हें वे निस्संकोच भाव से ग्रहण कर लेते थे। भारतीय संस्कृति एवं साधना के संपर्क में आने पर सूफियों ने इस संस्कृति से बहुत-कुछ ग्रहण कर लिया। नाथपंथी साधकों, योगियों आदि का प्रभाव तो इन पर जगह-जगह देखा जा सकता है। भावों के मिश्रण के साथ-ही-साथ उन्होंने भारतीय भाषाओं एवं बोलियों को भी अपनाया।

भाषा और साहित्य के क्षेत्र में सूफियों का योगदान अविस्मरणीय है। प्रो. निजामी के शब्दों में सूफियों की खानकाहों में ही उर्दू भाषा का जन्म हुआ। इनका तर्क यह है कि सूफियों को भारत में एक सम्पर्क भाषा की आवश्यकता थी जिससे कि वे भारतीय प्रजा के बीच अपने विचारों का प्रचार कर सकें। इस प्रकार आपसी सम्पर्क और विचारों से एक ऐसी भाषा विकसित हुई जिसमें अरबी-फारसी के साथ-साथ भारतीय भाषाओं के शब्द मिले थे। उर्दू भाषा के आरम्भिक ग्रन्थ भी सूफियों के द्वारा ही लिखे गये। दूसरी ओर भारतीय भाषाओं में भी सूफियों ने रचनाएं लिखीं। बाबा फरीद और अनेक सूफी संतों ने, जैसे- हुसैन शाह, बुल्ले शाह ने पंजाबी भाषा का प्रयोग किया और पंजाबी साहित्य को समृद्ध बनाया। कुतुबन, मंझन, जायसी, नूर मुहम्मद आदि सूफी कवियों ने अवधी भाषा का प्रयोग कर अनूठा साहित्य रचा। शेख अहमद खट्टू ने गुजराती भाषा का आरम्भिक साहित्य प्रस्तुत किया। इसी प्रकार शेख गेसूदराज के समय तक हिन्दी कविता तथा भजन संगीत के मिश्रण से एक नया आकर्षण पैदा किया। अमीर खुसरो एक अविस्मरणीय नाम है जिसने प्रारंभिक हिन्दी को खड़ी की, साथ ही उन्होंने अवधी और खड़ी बोली का उत्कृष्ट साहित्यिक प्रयोग किया।

हालांकि एक समय था जब राज्य-सेवा इस्लाम-धर्म की सेवा थी परन्तु इस्लाम की विशालता तथा राजकीय सफलता के साथ ही बहुत-सी बुराइयाँ भी उत्पन्न हो गई थीं। यह भी कहा जा सकता है कि

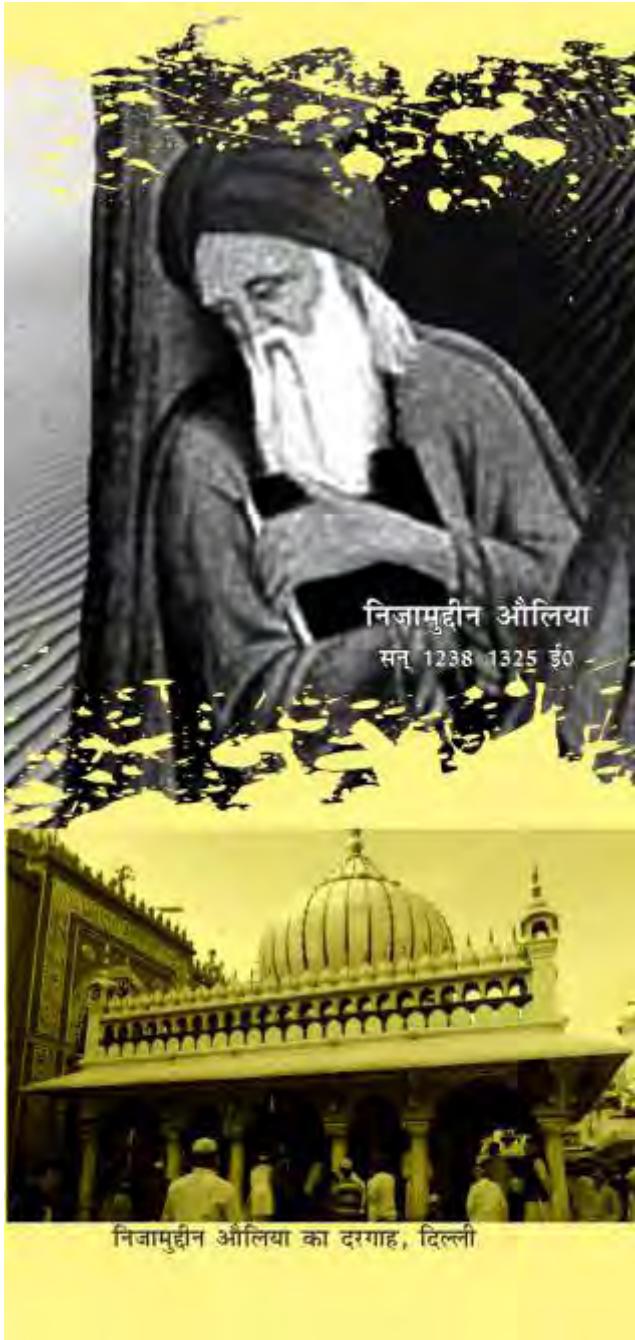
उलेमा वर्ग के निजी स्वार्थ तथा अमीरों की धन-लालसा आदि ने सच्चे साधकों को सरकार से दूर रहने के लिए प्रेरित किया। भारत में शेख मुइनुद्दीन के बाद बख्तियार काकी, बाबा फरीद और निजामुद्दीन जैसे चिश्ती शेखों ने राजकीय सम्मान प्राप्त होने के बावजूद अपनी आध्यात्मिक स्वतन्त्रता को कायम रखा था। बाबा फरीद को सुल्तान बलबन का दामाद बताया जाता है परन्तु उन्होंने अपने परिवार को अत्यन्त दयनीय आर्थिक अवस्था में रखा। यह भी कहा जाता है कि मजबूरी में उन्होंने एक बार बल्बन को किसी की सिफारिश के लिए पत्र भी लिखा था।

इसी प्रकार शेख निजामुद्दीन औलिया लगभग साठ वर्ष तक सल्तनत के शासकों के समकालीन रहे। परन्तु वे किसी दरबार में नहीं गए और उनसे जुड़ा यह कथन प्रसिद्ध है- “मेरे घर के दो दरवाजे हैं अगर सुल्तान एक से अंदर आता है तो मैं दूसरे से बाहर चला जाता हूँ।” कहा जाता है कि गयासुद्दीन तुगलक ने बंगल-विजय से लौटे समय शेख को संदेश भेजा था कि वह दिल्ली छोड़ दे। शेख निजामुद्दीन औलिया ने विचार प्रकट किया था कि ‘दिल्ली दूर अस्त’ यानी दिल्ली अभी दूर है। किसी घटनावश सुल्तान की दिल्ली पहुँचने से पहले ही मृत्यु हो गई। मुहम्मद तुगलक के प्रयत्नों के बावजूद सूफियों ने सरकार से संबंध रखना उचित नहीं समझा था।

चिश्ती सिलसिले के संत न केवल राज्य संबंधों से दूर थे अपितु वे आर्थिक सहायता तथा जागीरों आदि को भी स्वीकार नहीं करते थे। प्रारंभिक चिश्ती सूफियों ने काफी हद तक सरकार तथा राजकीय शान-शौकत से अपने को दूर रखा परन्तु गेसूदराज के समय तक चिश्तियों की इस विचारधारा में काफी परिवर्तन आ चुका था और तब यह जरूरी नहीं समझा जाता था कि आर्थिक कष्ट, रहस्यमय ज्ञान से ही प्रभु की कृपा प्राप्त हो सकती है। ऐसे भी प्रमाण मिलते हैं कि दक्षिण में चिश्ती सूफियों ने शासक वर्ग के साथ संबंध स्थापित करते हुए राजकीय सहयोग द्वारा समाज-सेवा की थी।

सुहारवर्दी सिलसिले ने तो आरंभ से ही राज्य से अपना संबंध रखा था। उनका विचार था कि सरकार के सहयोग तथा आर्थिक सहायता से वे समाज के दुखी व्यक्तियों के कष्टों का निवारण कर सकते हैं। यही नहीं, शेख बहाउद्दीन जकारिया कहा करते थे कि वे शासकों से संबंध स्थापित कर अक्सर उनकी विचारधारा तथा नीतियों में भी परिवर्तन ला सकते हैं। अगर उलेमा वर्ग ‘शरा’ के प्रतिनिधि बनकर शासकों को कट्टर नीतियों की ओर अग्रसर कर सकते हैं तो यह मुमकिन है कि शासकों का सूफी





विचारधारा तथा शेख से संबंध उदार विचारों को प्रोत्साहित कर सकता है। यह भी ध्यान में रखना जरूरी है कि सुहारवर्दी सिलसिला आर्थिक दृष्टि से संपन्न था। कहा जाता है कि आवश्यकता के समय सल्तनत के शासक भी शेख से आर्थिक सहायता की कामना करते थे। सुहारवर्दी सिलसिले के शेखों ने धन-संचय को भी गलत नहीं समझा था बशर्ते कि वह अच्छे कार्यों में लगाया जाए। सुहारवर्दी सूफी अपने परिवारों को भी अत्यन्त दुःखी जीवन व्यतीत करने का उपदेश नहीं देते थे। उनका विचार था कि साधारण जीवन-यापन के द्वारा भी ईश्वर-प्रेम को पाया जा सकता है। शारीरिक कष्ट को जिस रूप में बाबा फरीद जैसे संतों ने आवश्यक समझा था वह सुहारवर्दी सिलसिले के विचारों में आवश्यक न था। उनकी खानकाहों में तो हर तरह की आवश्यकताओं के लिए सामान उपलब्ध था।

भारत में आरंभ से ही सूफीमत तथा सूफी साधकों को राजकीय सम्मान के साथ विशाल लोकप्रियता प्राप्त होती रही है। परन्तु उलेमा वर्ग ने हमेशा ही सूफी-धर्म एवं साधना को नफरत की दृष्टि से देखा था तथा समय-समय पर सूफीमत तथा उनके तौर-तरीकों का विरोध भी किया था। पन्द्रहवीं शताब्दी तक इस विवाद ने कुछ सूफी साधकों के भीतर भी यह संदेह उत्पन्न कर दिया था कि भारतीय वातावरण में सूफीमत अत्यन्त उदार हो रहा है और वह शरीअत की पाबंदी से काफी दूर जा रहा है। ऐसी स्थिति के कारण एक उग्र प्रतिक्रिया का होना स्वभाविक था।

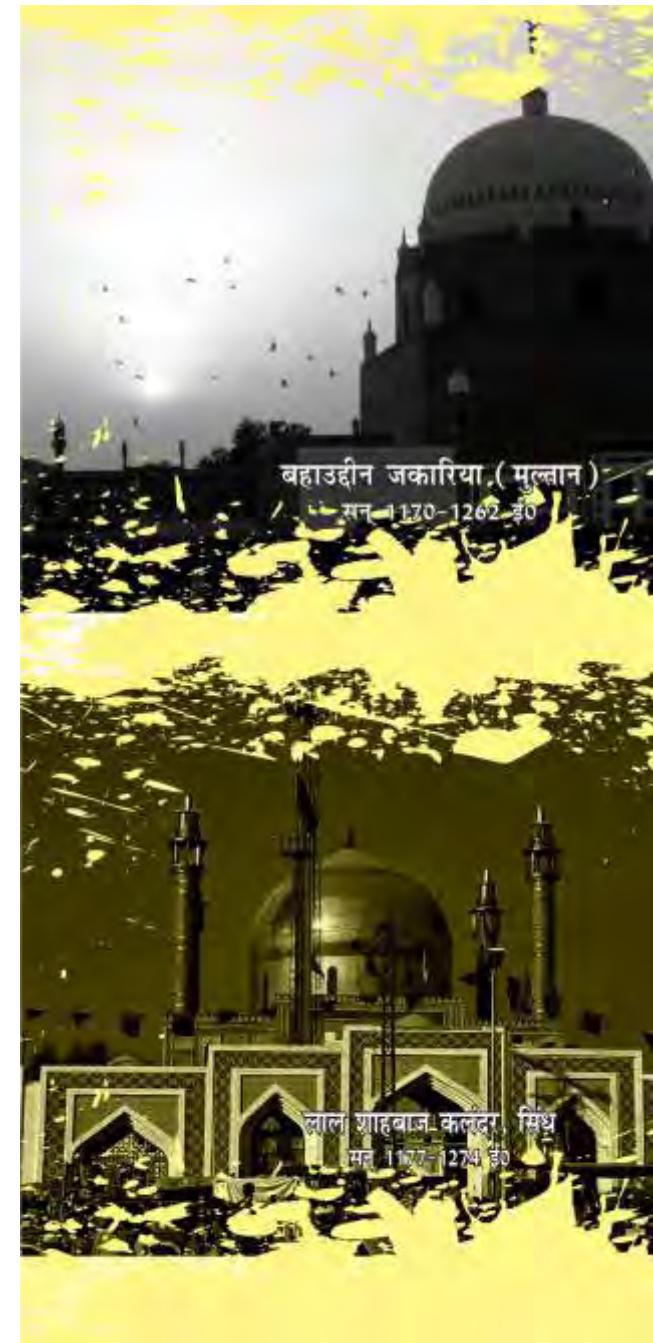
भारतवर्ष में शेख सरहिन्दी ने नक्शबंदी सिलसिले के नेतृत्व से एक ऐसी विचारधारा को प्रोत्साहन दिया जिसका मुख्य उद्देश्य सूफीमत तथा 'वहदत उल वजूद' का विरोध करना था। इस तरह का प्रतिक्रियावादी आंदोलन मूलतः दो कारणों से था— प्रथम, सम्राट् अकबर की अत्यन्त उदार नीतियों के परिणामस्वरूप भारत में इस्लामी राज्य के स्वरूप से जुड़ी स्थिति। दूसरे, हिन्दुओं के प्रति अकबर की धार्मिक नीति भी उन्हीं मानवतावादी तथ्यों पर आधारित थी जिनका संदेश निर्गुण भक्तों तथा सूफियों ने दिया था। अकबर ने हिन्दुओं को एक आवश्यक बुराई के रूप में नहीं समझा था। इस महान् बादशाह की नजर में हिन्दुओं को मुसलिम-राज्य से उतने ही अधिकार प्राप्त थे जितने कि मुसलमानों को। अकबर ने सूफियों के वहदत-उल-वजूद के सिद्धान्त पर विश्वास रखते हुए इस बात पर जोर दिया था कि हर इन्सान को अपने ढंग से धर्म को मानने का अधिकार है। किसी को भी किसी धर्म-विशेष को मानने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। यही कारण था कि अकबर की सुलहे-कुल विचारधारा कट्टरपंथियों

तथा उलेमा के लिए असहनीय थी। अकबर की उदार धार्मिक-सामाजिक नीति के विरुद्ध मुसलमानों में उग्रवादी प्रतिक्रिया आरम्भ हो चुकी थी और इसका गहरा प्रभाव नक्शबन्दी सम्प्रदाय पर पड़ा था। उल्लेखनीय है कि भारत में स्थापित सूफी सम्प्रदाय में यह सबसे अंत में स्थापित होनेवाला सम्प्रदाय था।

धर्म को लेकर शेख सरहिन्दी जैसे प्रतिक्रियावादी व्यक्तियों ने अपनी भरपूर कोशिशों से सूफीमत तथा अकबर की नीतियों का विरोध किया, क्योंकि उनकी निगाह में शरीअत का अस्तित्व ही मिट रहा था। शेख सरहिन्दी ने इस बात का भी प्रचार किया कि जो खुद संसार को बनाने वाला है वह मानव के समान नहीं हो सकता। किन्तु आगे चलकर शेख साहब ने खुद को 'नया पीर अवतार' बताना शुरू कर दिया और खुद को मुहम्मद साहब के समतुल्य घोषित कर दिया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि शेख अहमद सरहिन्दी का प्रभाव एवं लोकप्रियता कट्टरवादी एवं प्रतिक्रियावादी मुसलमानों के बीच काफी बढ़ने लगी थी। किन्तु अकबर की उदार धार्मिक नीति को जारी रखते हुए जहांगीर ने शेख साहब को कैदखाने में डलवा दिया।

आगे चलकर शाह वली उल्ला ने भी कुरान तथा शरीअत की पाबंदी को ऊँचा घोषित किया किन्तु उनका प्रयास था कि जहाँ तक हो सके बुजूद और शहूद में समन्वय स्थापित किया जाए क्योंकि दोनों ही रास्ते ईश्वर और उसके रहस्यों को जानने के लिए हैं। वे मानते थे कि विवाद का कारण आपसी नासमझी है। कहा जा सकता है कि शाह वली उल्ला के विचारों में व्यावहारिकता थी जब कि सरहिन्दी में धर्माधिता की प्रकाष्ठा जो कुछ भी रहा हो, अंत में शहूदिया प्रतिक्रियावादी आंदोलन की असफलता ने यह सिद्ध कर दिया कि भारत जैसी सामाजिक-सांस्कृतिक देश में सूफीमत में उत्पन्न सभी गैर-इस्लामी तत्वों को उखाड़ना कठिन है।

मध्यकालीन युग में बढ़ते हुए शहरीकरण से बहुत-सी बुराइयाँ उत्पन्न हो गई थीं। अमीर खुसरो ने 'किरान-उस-सादैन' में और बरनी ने अपनी पुस्तक 'तारीख-ए-फिरोजशाही' में जमाखोरी, दास-प्रथा, कालाबाजारी, शराबखोरी, वेश्यावृत्ति आदि अनेक सामाजिक बुराइयों का वर्णन किया है जो शायद अमीर वर्गों के धन से बढ़ रही थीं। ऐसी स्थिति में सूफी संतों ने प्रचार तथा खानकाहों के माध्यम से मनुष्य की कमजोरियों तथा सांसारिक आकर्षणों की निन्दा करते हुए समाज-सुधार का प्रयत्न किया।





भारतवर्ष में सूफीमत ने ऐसे महत्वपूर्ण काव्य तथा साहित्य को जन्म दिया है जिसके माध्यम से वह उदार विचारों को स्वतंत्र रूप से जनता तक पहुँचाने में समर्थ हुआ। यही कारण है कि उर्दू तथा हिंदी का सूफी-साहित्य आध्यात्मिक-रहस्यमय भावनाओं के साथ ही मानवतावाद की भावनाओं से भी ओतप्रोत है।

यह सूफीमत का ही प्रभाव है कि उर्दू काव्य में प्रायः मन्दिर-मस्जिद, हिन्दू-मुसलमान आदि का भेदभाव दृष्टिगत नहीं होता है क्योंकि सूफी-साहित्य इस्लामी शरीअत का नहीं, अपितु मनुष्यमात्र की एकता का प्रतिपादक रहा है। परिणाम यह हुआ कि उदार उर्दू कवियों, जैसे जफर, मीर, दाग, गालिब आदि, ने अपनी कविता में खुदा और मनुष्य की वास्तविकता को गहराई से पहचाना है। संक्षेप में, सूफी संतों ने जनता को यही संदेश दिया है कि मनुष्य-मनुष्य के बीच भेदभाव की दीवार व्यर्थ है।



### **जलालुउदीन मोहम्मद 'रूमी'**

के कुछ सुप्रसिद्ध उक्तियों का हिन्दी रूपान्तरण-

मैं न ही पूरब का हूँ और न ही पश्चिम का  
क्योंकि मेरे दिल में कोई भी सीमा मौजूद नहीं ।

अपने शब्दों को उंचा करो, आवाज को नहीं  
यह बारिश है जो फूलों को बढ़ने देती है, पर गरजती नहीं।

उसके दरवाजे पर दस्तक तो दो सही  
वो दरवाजा खुद-ब-खुद खुलता चला जायेगा ।

मोहब्बत सब्र के अलावा कुछ नहीं  
मैंने हर इश्क को इंतजार करते देखा है ।

जब मैं मर जाऊँ तो, मेरे मकबरे को जमीन पर मत खोजना  
यह लोगों के दिलों में आबाद मिलेगा ।

# बिहार में सूफी सिलसिला : परिप्रेक्ष्य एवं संदर्भ



आमतौर पर बख्तियार खिलजी के आक्रमण (1198 ई.) को बिहार में मुसलमानों के आगमन की शुरुआत माना जाता है। किन्तु बख्तियार खिलजी के आगमन के पहले ही मुसलमानों की कुछ बस्तियाँ यहाँ आबाद हो चुकी थीं और कुछ सूफी संत आध्यात्मिक कार्यों में मशगूल हो चुके थे। बिहार में मुसलमानों के अस्तित्व का पहला ऐतिहासिक प्रमाण पटना के निकट मनेर में प्राप्त होता है। लगभग 1180 ई. में जेरूसलम के संत ताज फकीह ने मनेर में एक आध्यात्मिक केन्द्र की स्थापना की। संभवतः यह पूर्वी भारत में पहला सूफी आध्यात्मिक केन्द्र (खानकाह) था। बहरहाल संत ताज फकीह ने मनेरवासियों के दिलों पर विजय प्राप्त की और साम्प्रदायिक-सामाजिक सौहार्दय का सिलसिला जारी रखा। उनके अनुयायियों एवं पुत्रों ने पूरे बिहार में अध्यात्म की रोशनी फैलाने का मिशन चलाया। उनके बड़े बेटे इसराइल मनेर की खानकाह एवं ताज फकीह के उत्तराधिकार हुये जबकि मंझले पुत्र इस्माइल तथा छोटे पुत्र अब्दुल अजीज को कमशः उत्तर एवं दक्षिण बिहार में मिशन चलाने का कार्यभार सौंपा गया।

बिहारी समाज ने सूफी आन्दोलन को उर्वरक-भूमि प्रदान की और सूफी संतों ने समाज पर अपनी अमिट छाप छोड़ी। बिहार में सबसे पहले चिश्ती और सुहरावर्दी सिलसिले के संतों एवं उनके शिष्यों का आगमन हुआ। बिहार लगभग सभी सूफी सिलसिलों की रंगभूमि रहा, जैसे-चिश्ती, सुहरावर्दी, कादरी, शतारी, मदारी, फिरदौसी, नक्शबन्दी, जुनैदी, तेगिया, फरीदी, फैय्याजिया, जलीलिया आदि-आदि, यद्यपि लोकप्रियता सबसे अधिक सुहरावर्दी, चिश्ती एवं कादरी सिलसिले को प्राप्त हुई। बिहार में सुहरावर्दी सिलसिले की फिरदौसी शाखा का विकास हुआ जिसके महानतम संत मखदुम शरफुद्दीन यहया मनेरी थे। उन्होंने सूफी आन्दोलन को बिहार में शिखर पर पहुँचाया।

सुहरावर्दी सिलसिले की दो प्रमुख उपशाखाएँ थीं—फिरदौसिया और शतारिया। इसकी दूसरी उपशाखा के मिशन की शुरुआत हजरत शेख अब्दुल्लाह शतार के बिहार आगमन के साथ हुई। आप प्रसिद्ध सूफी संत काजिन-उला-शतारी के गुरु थे। आज काजिन-उला-शतारी की शिक्षा का प्रकाश शतारिया सिलसिला के लगभग सभी खानकाहों में मौजूद है। इनकी मार्ग दर्शक रचना ‘मादनुल असरार’ शतारिया सिलसिले का सबसे प्रमाणिक ग्रन्थ माना जाता है। काजिन-उला-शतारी के पुत्र अब्दुल फतह हिदायतुल्लाह सरमस्त हाजीपुर (वैशाली) के निकट तनगौल में बस गये। ये शतारी सिलसिला के एक लोकप्रिय सन्त हुए। हजरत हाजी हमीद इनके खलीफा थे, जिनकी खानकाह सारण जिला के रतन सराय में विछ्यात थी। काजिन-उला-शतार के प्रमुख शिष्यों में हजरत गौस भी थे। ये ग्वालियर के रहनेवाले

थे। गौस बाबर के समकालीन थे। वे शत्तारिया सिलसिले के प्रमुख संत थे। इन्होंने 'जवाहरे खमसा' नामक प्रसिद्ध पुस्तक की रचना की। हजरत गौस ग्वालियरी के मुरीदों की सूची में शेख अलवी का नाम सबसे उल्लेखनीय है। ये गुजरात के रहनेवाले थे और इनके खलीफा मीर सैयद यासीन बिहार शरीफ पधारे। इन्होंने बिहारशरीफ के खंडकपर मुहल्ले में खानकाह की स्थापना की। इनके सुप्रसिद्ध खलीफा मौलाना शाहबाज ने भागलपुर में खानकाह की नींव डाली। भागलपुर में इनका खानकाह आज भी आबाद है और बिहार की महानतम् खानकाहों में से एक है।

अब्दुल फतह हिदायतुल्ला सरमस्त के भतीजे मखदूम शाह अली ने हाजीपुर के उत्तर-पूर्व में अवस्थित जन्दाहा कस्बे में शत्तारी सिलसिले की एक अन्य महत्वपूर्ण खानकाह की नींव डाली और यहाँ बस गये। मुगलवंश की उन्नति के काल में इस खानकाह ने काफी लोकप्रियता व प्रसिद्धि पाई। शाह रूकनुद्दीन इस खानकाह के एक अन्य प्रसिद्ध संत हुए। पीर इमामुद्दीन इसी खानकाह के शाह रूकनुद्दीन के महत्वपूर्ण खलीफा थे। पीर इमामुद्दीन ने शत्तारी सिलसिले की प्रमुख कृति 'मनाहिजुशशत्तार' की रचना की।

पीर इमामुद्दीन ने शत्तारी सिलसिले की एक प्रमुख खानकाह राजगीर के मिल्की मुहल्ले में आबाद की। वे मूलतः राजगीर के ही रहनेवाले थे और उनके पूर्वज मंझन शत्तारी की राजगीर में प्राचीन खानकाह थी। इस खानकाह के सूफियों एवं शुभ-चिन्तकों ने मखदूम कुण्ड के पास सड़क के किनारे एक बड़े मदरसे को स्थापित किया। राजगीर की इस खानकाह के प्रति श्रद्धा रखेनवालों में मुगल बादशाह फरूखसियर भी एक था। फरूखसियर ने यहाँ एक मस्जिद भी बनवाई। मस्जिद एवं मजार का अस्तित्व आज भी मौजूद है। 'मलफूजाते रूकनिया' के नाम से इमामुद्दीन शत्तारी ने जन्दाहा के प्रख्यात सूफी संत शेख रूकनुद्दीन के प्रवचनों को राजगीर में संकलित किया। यह कृति सत्तारिया सिलसिले का एक अन्य महत्वपूर्ण आध्यात्मिक रत्न है।

काजिन-उला-शत्तारी के छोटे बेटे शाह अब्दुरहमान ने एक खानकाह मुजफ्फरपुर के सरइयाँगंज में स्थापित की थी। यह शत्तारी सिलसिले का एक अन्य लोकप्रिय आध्यात्मिक केन्द्र था। समस्तीपुर के ताजपुर में इस सिलसिले के एक महत्वपूर्ण सूफी, शाह दानियाल की खानकाह भी महत्वपूर्ण थी। शाह अली अब्दुल कादरी इन्हीं के दामाद थे। इसी प्रकार बेगुसराय जिले के बलिया में शत्तारिया सिलसिले की





एक खानकाह आज भी मौजूद है। मशहूर शत्तारी सूफी बुजुर्ग शाह अलाउद्दीन शत्तारी इसके संस्थापक थे। औरंगजेब काल के शत्तारिया सिलसिले के एक अन्य सूफी संत मुल्ला सैयद बहीउद्दीन आलमगिरि का नाम उल्लेखनीय है। आप अरबी व फारसी के अतिरिक्त उर्दू एवं स्थानीय भाषा के भी ज्ञाता व पोषक थे तथा मुल्ला मीतन के नाम से विख्यात हुए। उनकी ख्याति इतनी अधिक हुई कि बादशाह औरंगजेब ने अपने पौत्र अजीम, जो बिहार का सूबेदार भी था, के लिये उनको ही गुरुवर चुना। उनका मजार पटना के मीतन घाट में सुप्रसिद्ध है। वहाँ एक मस्जिद उन्होंने बहाँ जो मुगल स्थापत्य कला का शानदार नमूना है। वह मुगल काल की अकेली दो मंजिली मस्जिद है। उन्होंने वहाँ एक विख्यात मदरसे की स्थापना की जिसके आप प्रिन्सिपल रहे। वहाँ मुल्ला मुहम्मद हुसैन और मुल्ला तहकीक जैसे मुसलिम विद्वानों ने शिक्षा ग्रहण की वही राजा उजागर चन्द आदि जैसे कई हिन्दुओं ने भी शिक्षा पायी।

शत्तारिया सिलसिले के अनुयायी ईश्वर के साथ तादात्म्य स्थापित कर और उसमें तल्लीन होकर तेजी से चलने, तप करने आदि में विश्वास करते थे। यह सिलसिला आत्म-सुधार एवं आत्म-मंथन के सकारात्मक सोच पर आधारित था। “वह कभी शिकवा-शिकायत नहीं करता, जो कुछ मिलता है, खा-पी लेता है तथा वास्तविक दानी की दृष्टि में रहकर जीता है।” इस सिलसिले पर हिन्दू धर्म का प्रभाव स्पष्टः दृष्टिगोचर होता है। इस सिलसिले के महानतम संत एवं उपदेशक वैशाली के निकट बसाढ़ का अबुल फैज काजिन ओला थे जिन्हें 1476 ई. में अग्रणी संत शेख अब्दुल्ला शत्तारी से मांडू में आध्यात्मिक दीक्षा मिली थी।

बिहार में शत्तारिया सिलसिले की अपेक्षा सुहरावर्दी सिलसिले की फिरदौसी शाखा को अत्यधिक लोकप्रियता मिली। बिहार के सांस्कृतिक-आध्यात्मिक इतिहास में फिरदौसी सूफियों का योगदान अविस्मरणीय है। इन्होंने जीवन में सादगी और दुनिया से प्रेम के आधार पर आम-जनों के साथ तादात्म्य स्थापित किया। संतों ने बताया कि ईश्वर एक है। उन्होंने हिन्दू धर्म की प्रशंसा की और जन-भाषाओं को तवज्जो दिया। फिरदौसी संतों ने मध्यकालीन घृणा व नफरत के बदले श्रद्धा, सम्मान एवं प्रेम का दरिया बहाया, यद्यपि उन्होंने इस्लाम धर्म के दर्शनिक सार-तत्व का कभी परित्याग नहीं किया। अपनी उदारवादी भावना के कारण उन्हें अक्सर इस्लाम धर्म के मुल्लाओं के तोखे विरोध का सामना करना पड़ा। कुछ सूफी संतों को धार्मिक कट्टरता की बलि भी चढ़े। फिर भी, उन्होंने भैतिक उपलब्धियों को कोई विशेष महत्व नहीं दिया और इस दुनिया की आसक्तियों से अपने को सर्वथा अलग रखा।

फिरदौसी सिलसिले के सबसे महत्वपूर्ण संत शेख शरफुद्दीन अहमद यहया मनेरी थे। इनका जन्म 1263ई. में मनेर शरीफ में हुआ था। इनके पिता शेख मखदूम कमालुद्दीन यहया मनेरी स्वयं एक विख्यात सूफी संत थे। कहते हैं कि शेख मखदूम कमालुद्दीन यहया मनेरी बिहार के बुजुर्गोंआला सूफी संत ताज फकीह के पोते थे। अपने पितामह इमाम ताज फकीह के साथ मात्र 4 साल की उम्र में वे यरूशलाम के हेब्रन मुहल्ले से मनेर आये और फिर यही बस गये। शेख मखदूम यहया मनेरी को मनेर के खानकाह का उत्तराधिकार अपने पिता शेख इस्माइल से प्राप्त हुआ था। बिहार में और खासकर मनेर शरीफ के ईर्द-गिर्द सूफी आंदोलन को आगे बढ़ाने में उनका उल्लेखनीय योगदान था। शेख यहया मनेरी सल्तनत काल के एक महत्वपूर्ण सूफी संत थे। उनकी शादी एक अन्य महत्वपूर्ण सूफी संत पीर जगजीत की बेटी रजिया के साथ हुई थी। इनकी पाँच संतानें थीं जिनमें एक बेटी और चार बेटे थे। बड़े बेटे जमीलुद्दीन इनके उत्तराधिकारी और मनेर की खानकाह के प्रधान हुए, जबकि दूसरे बेटे शरफुद्दीन बिहारशरीफ में आकर बस गये। शेख शरफुद्दीन का न सिर्फ बिहार बल्कि सम्पूर्ण उत्तर भारत के प्रमुख सूफी संतों में अग्रणी स्थान रहा। मखदूम कमालुद्दीन यहया मनेरी की मृत्यु 1291ई. में मनेर शरीफ में ही हुई और इनकी याद में बनी 'बड़ी दरगाह' आज भी सुप्रसिद्ध है।

शेख शरफुद्दीन यहया मनेरी के पिता शेख कमालुद्दीन यहया मनेरी ने इनके पुकार का नाम अहमद रखा था। शेख शरफुद्दीन का प्रारम्भिक जीवन गरीबी एवं अभाव में ही गुजरा और प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। लगभग 1304ई. में शेख मखदूम शरफुद्दीन यहया मनेरी अपने गुरु शेख अबू तव्वामा के पास सोनार गांव (बंगाल) चले गये। शेख अबू तव्वामा मूलतः बुखारा के रहनेवाले थे। अबू तव्वामा बुखारा से विस्थापित होकर दिल्ली आये और अंततः पूर्वी भारत के सोनारगांव में स्थापित हो गये। दिल्ली से सोनारगांव के प्रस्थान की प्रक्रिया में वे कुछ दिनों के लिये मनेर शरीफ में भी रुके। इसी दरम्यान शरफुद्दीन को उनसे आध्यात्मिक रोशनी प्राप्त हुई। वे उनके मुरीद हो गये। शरफुद्दीन लगभग दो दशकों तक सोनारगांव रहे। वहीं उनकी शादी हो गई और जकीउद्दीन नाम पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई। लगभग 1323ई. में वे अपने बच्चे को माता के पास छोड़कर वापस मनेर लौट आये। किन्तु शरफुद्दीन की ज्ञान-पिपासा शान्त नहीं हुई। उन्होंने दिल्ली की यात्रा की और बहुत दिनों तक प्रसिद्ध सूफी संत निजामुद्दीन औलिया के साथ रहे। उन्होंने पानीपत के शरफुद्दीन से भी मुलाकात की किन्तु शेख नजीबुद्दीन फिरदौसी से उनकी मुलाकात मील का पत्थर साबित हुई। उनसे प्रभावित होकर उनका





शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। शेख नजीबुद्दीन की मृत्यु के बाद इन्होंने उनका उत्तराधिकार ग्रहण किया। किन्तु शरफुद्दीन ने जगह-जगह भ्रमण करना शुरू कर दिया। वे कुछ वर्षों तक शाहाबाद जिले की कुछ जगहों जैसे—बबुरा, बिहिया, डुमराँव आदि में रुके और ज्ञान व अध्यात्म की रोशनी फैलाई। अन्त में वे राजगीर पहुंचे और यहाँ की पहाड़ियों में एकान्तवास करने लगे। यहाँ उन्होंने खुंद नामक गुफा में तप भी किया। 1336ई. में शरफुद्दीन यहया मनेरी ने राजगीर से लगभग 12 मील दूर बिहार शरीफ में खानकाह की स्थापना की। अपने राजगीर प्रवास में भी शरफुद्दीन प्रत्येक शुक्रवार को जुम्मे की नवाज अदा करने बिहार शरीफ आते थे तथा आध्यात्मिक गुरुओं से उनका विमर्श होता रहता था।

मखदूम शरफुद्दीन यहया मनेरी ने अपने ईर्द-गिर्द संतों, अनुयायियों एवं श्रद्धालुओं की एक बड़ी जमात खड़ी की। वे जहाँ भी गये धार्मिक सहिष्णुता, सामाजिक सद्भाव, मानव सेवा व प्रेम का संदेश दिया। उनके श्रद्धालुओं एवं अनुयायियों में एक बड़ी संख्या हिन्दू धर्मावलम्बियों की थी। उन्हें सभी वर्गों के लोगों की श्रद्धा व सम्मान समान रूप से प्राप्त हुआ, जो उनके द्वारा स्थापित खानकाहों एवं दरगाहों पर आज भी देखने को मिलता है। इनकी लोकप्रियता इतनी बढ़ गई थी कि तत्कालीन सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलक ने भी शेख साहब को एक मार्गदर्शक पत्र लिखने का आग्रह किया था। सुल्तान ने मखदूम शरफुद्दीन यहया मनेरी को एक भव्य सराय तथा उसके प्रबन्धन के लिये राजगीर परगने की जागीदारी उपहार स्वरूप देने का प्रस्ताव किया। किन्तु साधु-सन्त को जागीर की क्या जरूरत? उन्होंने प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

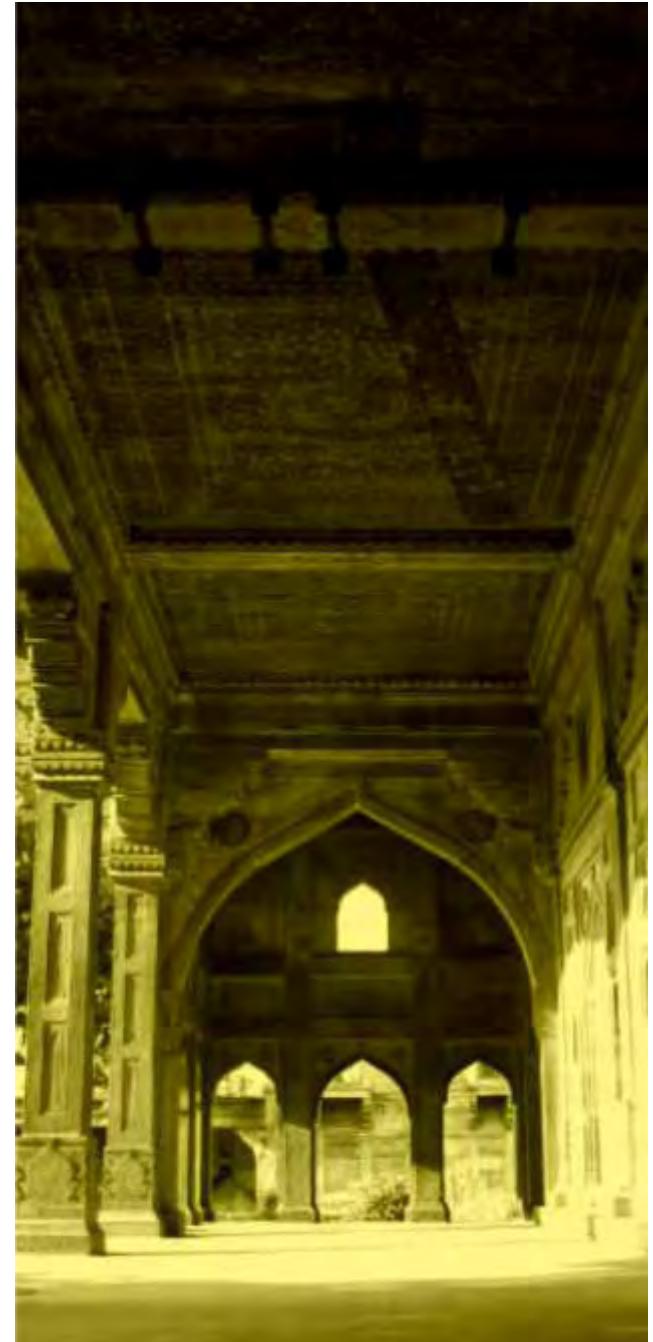
2 फरवरी, 1381 को मखदूमेजहाँ शरफुद्दीन यहया मनेरी की मृत्यु बिहारशरीफ के दरगाह खानकाहे मुअज्जम में हो गयी। उस दौर में मखदूम शरफुद्दीन के दर्जनों शिष्यों की खानकाहें समाज में तसव्वुफ की चांदनी बिखरने में व्यस्त थीं। इनमें गया के गेसूदराज नीशापुरी, फूलवारी शरीफ के मिनहाजुद्दीन रास्ती, चौसा के काजी शम्सुद्दीन, चरवावाँ के मौलाना आमूँ, शेखपुरा के जलाल मनेरी तथा अहमद लंगर दरिया की खानकाहें बेहद महत्वपूर्ण थीं। बिहार शरीफ में मखदूमेजहाँ शरफुद्दीन मनेरी की खानकाहे-मुअज्जम का उत्तराधिकार मौलाना मुजफ्फर बल्खी ने संभाला। मौलाना मुजफ्फर बल्खी उच्च कोटि के विद्वान थे। फिरदौसी सिलसिले में उनका नाम आज भी बड़ी इज्जत से लिया जाता है। इनका जन्म बल्ख में हुआ था और वे बिहार में आकर बस गये थे। वे दिल्ली में फिरदौसी मदरसा के प्रिन्सिपल भी रहे। मखदूमेजहाँ की खानकाह में मुजफ्फर बल्खी के बाद शेख हुसैन-बिन मुइज बल्खी ने बिहार में सूफ़ी आंदोलन / 20

सज्जादानशीन का पद संभाला तो मुजफ्फर बल्खी की अपेक्षा उनके स्थायी प्रवास ने यहाँ फिर वही पुरानी रौनक व गतिविधियाँ लौटा दी जो कभी मखदूम शरफुद्दीन यहया मनेरी के समय रहा करती थी। शेख हुसैन मुइज बल्खी ने रहस्यमय विचारों को और भी परिमार्जित किया तथा लोगों के हृदय में प्रेम की धारा प्रवाहित की।

बिहार शरीफ की खानकाहे मुअज्जम स्थानीय एवं शहरी श्रद्धालुओं के लिये हर दौर में इज्जत व आकर्षण का केन्द्र बनी रही। बल्खी उत्तराधिकारियों के बाद जब खुद शरफुद्दीन यहया के वंशज उत्तराधिकारी बने, तब भी छोटे-बड़े, राजा-रंक सभी के आने और श्रद्धा-सुमन अर्पित करने का सिलसिला कायम रहा। सिकन्दर लोदी, शेरशाह, सुलेमान केरानी, जहांगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब, शाहआलम द्वितीय इत्यादि में से कुछ ने तो व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होकर तो कुछ ने शाही फरमान या आर्थिक मदद से श्रद्धा सुमन अर्पित किया।

शेख मखदूम शरफुद्दीन यहया मनेरी के अपने मौसेरे भाई मखदूम अहमद चिरपोश सुहरावर्दी की बिहार शरीफ के अम्बेर मुहल्ले में स्थित खानकाह भी कम आकर्षण का केन्द्र नहीं थी। सुल्तान फिरोज शाह तुगलक ने मखदूमेजहाँ के अलावा इनकी खानकाह में भी हाजिरी दी थी। बल्ख के शाही परिवार से तालुकात रखने वाले मौलाना शम्सुद्दीन बल्खी अपने बाल-बच्चों समेत मखदूम अहमद चिरपोश की सेवा में आ गये थे।

यहाँ एक महत्वपूर्ण एवं बुजुर्ग सुहरावर्दी संत शहाबुद्दीन पीर जगजोत की चर्चा अनिवार्य है। वे सुल्तान बलबन के समकालीन थे। आप तेरहवाँ सदी के प्रारम्भ में बिहार आये और पटना शहर की सुदूर पूर्वी सीमा पर अवस्थित जेठूली नाम गांव में बस गये। 15 सितम्बर 1266 ई. को इनकी मृत्यु हो गई। इनकी मजार ‘कच्ची दरगाह’ के नाम आज भी प्रसिद्ध है। पीरजगजोत बिहार के प्रारम्भिक सूफी बुजुर्गों में से एक थे जिनकी कीर्ति कई शताब्दियों के बाद भी समाप्त नहीं हुई। पीर जगजोत की चार बेटियाँ थीं और सभी अद्भुत करिश्मा ! इन्होंने ऐसे सपूतों को जन्म दिया जो बिहार के सूफी आनंदोलन को चरमोत्कर्ष प्रदान करने हेतु अद्वितीय ऐतिहासिक योगदान के लिये जाने जाते हैं। शरफुद्दीन यहया मनेरी, अहमद चिरपोश, तथ्यमुल्लाह सफेदबाज, हुसैन धुकड़पोश सभी आपके सगे नाती थे और सबके सब ज्ञान व अध्यात्म के क्षेत्र में अद्वितीय। इनकी तृतीय पुत्री बीबी कमाल ने जहानाबाद के काको गांव में





अध्यात्म व ज्ञान के प्रसार का दायित्व भली-भाँति निभाया। इनका मजार आज भी आस्था का केन्द्र है और जनसामान्य के बीच अत्यधिक लोकप्रिय भी।

मखदुमेजहाँ शरफुद्दीन यहया मनेरी के वंशजों में परवर्ती सूफी संत शाह दौलत मनेरी का नाम उल्लेखनीय है। इनका जन्म 1493 ई. में मनेर में हुआ था। यद्यपि उन्होंने आध्यात्मिक ज्ञान में दीक्षा बिहार शरीफ के समकालीन संत शाह कुतुब मोवाहिद से प्राप्त की किन्तु स्थायी निवास उन्होंने मनेर शरीफ को ही रखा और वहाँ की सुप्रसिद्ध खानकाह के उत्तराधिकारी बने। इनकी शादी शाह फरीद की सुपुत्री से हुई थी। वे अकबर एवं जहाँगीर के समकालीन थे। अनेक संतों एवं सामंतों से उनके गहरे तालुल्कात थे जिनमें शाह अर्जानी, मिर्जा अब्दुल रहीम खानेखाना, राजा मान सिंह और इब्राहीम खाँ काकर के नाम अधिक महत्वपूर्ण हैं। शाह दौलत अपनी लोकप्रियता एवं आध्यात्मिक ज्ञान के लिए सुप्रसिद्ध थे। इब्राहिम खाँ काकर, जब बिहार का सूबेदार बना तो उसने श्रद्धावश संत के लिए एक भव्य मकबरे का निर्माण मनेर शरीफ में कराया जो 'छोटी दरगाह' के नाम से प्रसिद्ध है। यह मकबरा पूर्वी भारत में मुगल स्थापत्य शैली के शानदार नमूने के रूप में जाना जाता है। 1608 ई. में शाह दौलत की मनेर में मृत्यु हो गई।

बिहार में कादरी एवं नक्शबन्दी सिलसिले का आरम्भ अपेक्षाकृत बाद में हुआ। शायद अली शेर इस सम्प्रदाय के बिहार में पहले संत थे। उन्हें औरंगाबाद के कुटुम्बा में दफनाया गया। किन्तु कादरी सिलसिले के प्रथम महत्वपूर्ण संत शैयद अमीर मुहम्मद कादरी रज्जाकी थे। वे बगदाद के प्रतिष्ठित शेख अब्दुल्ला कादिर जीलानी परिवार से सम्बन्धित थे। उन्होंने 15वीं शताब्दी में औरंगाबाद के अमज़र शरीफ में एक सम्मानित खानकाह की स्थापना की। उन्होंने अपने श्रद्धालुओं एवं शिष्यों की एक बड़ी जमात खड़ी की। आज की तारीख में इस दरगाह में इनके 40 से अधिक मुरीदों की कब्रगाह मौजूद है। सैयद अमीर मुहम्मद कादरी के दूसरे बेटे सैयद जलालुद्दीन कादरी के वंशज औरंगाबाद के दाऊद नगर में आकर बस गये और एक लोकप्रिय खानकाह की नींव डाली। दाऊद नगर से लगभग 8 किलोमीटर उत्तर हसपुरा में इनके ही वंशज ने एक अन्य उल्लेखनीय खानकाह की स्थापना की। सैयद अमीर मुहम्मद कादरी के पोते ने मनेर शरीफ के निकट एक खानकाह को स्थापित किया। आज की तारीख में इस खानकाह के साथ एक मदरसा एवं मस्जिद का अस्तित्व भी मौजूद है। इस परिसर से सम्बद्ध मस्जिद, मदरसा एवं दरगाह का निर्माण स्थानीय जागीरदार मिर्जा दनियाल ने करवाया था।

शेख अब्दुल कादिर जिलानी के वंशजों में एक कादिर परिवार बगदाद, मुल्तान तथा दिल्ली होता हुआ बिहार पहुंचा और पटना शहर के मुगलपुरा मुहल्ले में एक खानकाह की नींव डाली। इसी परिवार के एक अन्य सूफी संत शाहटोली (दानापुर) में आबाद हुए, भावी पीढ़ियां इस खानकाह से जुड़ी रहीं। बाढ़ में एक महत्वपूर्ण खानकाह की नींव अबू सईद जाफर मुहम्मद कादरी ने डाली। आप कई पुस्तकों के लेखक तथा अरबी-फारसी भाषा के साथ-साथ इस्लामिक विधाओं के बड़े ज्ञाता थे।

18वीं सदी में पटना के फुलवारी शरीफ में मुजीबुल्लाह कादरी ने एक लोकप्रिय खानकाह की नींव डाली। सच्चाई तो यह है कि आपके कारण ही गुमनाम फुलवारी शरीफ को अभूतपूर्व ख्याति प्राप्त हुई। मुहम्मद बदरूद्दीन और शाह अमानुल्लाह इस खानकाह के अन्य प्रसिद्ध सूफी संत थे। इमारते शरीया बिहार व उड़ीसा इसी खानकाह के अन्तर्गत हैं। फुलवारी शरीफ के सिलसिले की एक खानकाह मंगल तालाब में खानकाहे इमादिया के नाम से विख्यात है। पीर मुजीबुल्लाह कादरी इस खानकाह के संस्थापक थे और इनके बड़े पुत्र के वंशज ही इस खानकाह के उत्तराधिकारी होते आ रहे हैं। हजरत इमामुहीन कलंदर, मुजीबुल्लाह कादरी के गुरु थे और गुरु के नाम पर ही यह कादरी सिलसिला इमादिया उपशाखा कहलाया।

इसी प्रकार सैयद हसन दानिशमन्द के वंशज पीरदमड़िया के नाम से विख्यात हुए। सैयद हसन दानिशमन्द खुद मखदूम जहानियाँ जहाँगशत की संतति थे और उनकी खानकाह सिवान में आबाद थी। वह इलाका आपके नाम से जाना गया और हसनपुर कहलाया। इनके बड़े बेटे अहमद पीरदमड़िया ने हाजीपुर के मीनापुर में एक खानकाह की नींव डाली। सैयद हसन दानिशमन्द के छोटे बेटे हुसैन पीर दमड़िया भागलपुर के खलीफाबाग आये और एक खानकाह को आबाद किया। इनके वंशज यहां आज भी प्रतिष्ठित हैं और यहां का पुस्तकाल हस्तलिखित पाण्डुलिपियों से समृद्ध है। सैयद हसन दानिशमन्द के एक पोते सैयद मुहम्मद पीरदमड़िया पटना के मीर सलामी आये और गंगा घाट के किनारे एक लोकप्रिय खानकाह की स्थापना की। आज की तारीख में यह घाट दमड़िया घाट के नाम से जाना जाता है।

नालन्दा जिले के इस्लामपुर में भी कादरी सिलसिले की एक खानकाह आज भी अस्तित्वमान है। शाह विलायत अली इस खानकाह के संस्थापक थे। सैयद सुलेमान नदवी के पिता सैयद अबुल हसन इनके ही शिष्य थे। इस सिलसिले की खानकाहें टीटायगढ़ (बंगाल) और मुजफ्फरपुर के कांटी में भी अवस्थित हैं।





बिहार में नक्शाबन्दी सिलसिले की मुहिम ने भी दस्तक दी। ज्ञातव्य है कि विश्व प्रसिद्ध नक्शाबन्दी सिलसिला भारत में दो शाखाओं में बंट गया—(1) नक्शाबन्दिया मुजाहिदिया और (2) नक्शाबन्दिया अबुल उलाइया। बिहार में नक्शाबन्दी सिलसिले की दोनों शाखाएँ सक्रिय हुईं किन्तु अधिक लोकप्रियता अबुल उलाइया शाखा को प्राप्त हुई। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं कि सैयद अमीर अबुलउला के बाद इस सिलसिले में सबसे बड़ा नाम इस उपमहाद्वीप में हजरत मखदूम शाह मुहम्मद मुनइम पाक का है।

मखदूम शाह मुहम्मद मुनइम पाक का जन्म 1671 ई. में शेखपुरा जिला के पचना गाँव में हुआ था। आप मखदूम शम्सुद्दीन हक्कानी के वंशज थे जिनका मजार बिलौरी (लखीसराय) में मौजूद है। मखदूम हक्कानी महान् सूफी संत इब्राहिम बिन अहमद बल्खी की संतति थे जो अबू बिन अदहम के नाम से विख्यात थे। अपने पैतृक गाँव पचना में प्रारम्भिक शिक्षा पूरी करने के बाद मखदूम शाह मुहम्मद मुनइम पाक पटना जिला के बाढ़ में स्थित सैयद अबू सईद जाफर मुहम्मद कादरी की खानकाह पहुंचे। कई वर्षों तक कादरी सिलसिले की शिक्षा ग्रहण करने के बाद आप दिल्ली प्रस्थान कर गये। वहाँ लगभग चालीस वर्षों तक जामा मस्जिद (दिल्ली) के पीछे वाले मदरसे में उच्च शिक्षा के लिए छात्रों को पढ़ाया। दिल्ली प्रवास के दौरान आप प्रसिद्ध नक्शाबन्दी सूफी संत शाह मुहम्मद फरदाह के सानिध्य में चले गये और लगभग ग्यारह वर्षों तक नक्शाबन्दिया अबुल उलाइया की आध्यात्मिक शिक्षा ग्रहण की। शाह मुहम्मद फरदाह की मृत्यु के बाद आपको उनका उत्तराधिकारी बनाया गया। कई वर्षों तक यहाँ लोगों का आध्यात्मिक मार्गदर्शन करने के बाद आप पटना लौट आये और मीठन घाट में अवस्थित मुल्ला मीठन की मस्जिद के प्रांगण में एक प्रसिद्ध खानकाह की स्थापना की। आपके शिष्यों और फिर उनके शिष्यों के माध्यम से इस उप-महाद्वीप में अनगिनत खानकाहों की स्थापना हुई। आपके प्रमुख शिष्यों में ख्वाजा रूकनुद्दीन ने बख्शीघाट (पटना सिटी) में, मौलाना हसन ने फतुहाँ में, मोहम्मद दियाम ने ढाका में तथा गुलाम हुसैन ने दानापुर में खानकाह की स्थापना की। मखदूम शाह मुहम्मद मुनइम पाक की मृत्यु 1771 ई. में 103 वर्ष की आयु में हो गई। इनकी खानकाह पटना के मीठन घाट में आज भी आबाद है। आपके खलीफा मखदूम शाह हसन अली मुनएमी की खानकाह ख्वाजा कला से सटे नीम घाट में आज भी मौजूद है।

मुनएमिया अबुलउलाइया सिलसिला की अन्य लोकप्रिय खानकाह गया के शाह अताहुसैन 'फानी' की भी है। कैफीयतुल, दीदेमगरीब, आरेफीन, कन्जुल अन्साब आदि आपकी चर्चित पुस्तकें हैं। भारत के

---

बिहार में सूफ़ी आंदोलन / 24

अलावा अरब व पश्चिम एशिया में भी आपके मुरीद व श्रद्धालु फैले हुए थे। फानी की लोकप्रिय खानकाह आज भी आबाद है।

बिहार में नक्शन्दिया शाखा की मुजाहिदिया उपशाखा ने भी दस्तक दी। 1857 के विद्रोह के नायक वीर कुँवर सिंह के पिता साहबजादा सिंह भी सूफी सिलसिले से काफी प्रभावित थे। ‘तारीखे उज्जैनिया’ के अनुसार साहबजादा सिंह का साहकाले के साथ घनिष्ठ सम्बद्ध था। साहकाले एक प्रमुख सूफी सन्त थे जिनका मकबरा पटना के पश्चिम दरवाजा में स्थित है। पटना के गोलकपुर में सूफी सन्त बौलक शादिह का दरगाह है। उनके दरगाह के ठीक बगल में बुल्ला शाह का दरगाह है। सासाराम के चन्दन शाहीद का दरगाह कैमूर की पहाड़ियों में है। बिहार में जमालुद्दीन हरमुजी एक प्रसिद्ध सूफी सन्त थे जिनका दरगाह हिलसा में अवस्थित है। जमालुद्दीन हरमुजी को ‘जमान जारा’ के नाम से लोकप्रियता हासिल हुई। मुल्ला मोहन औरंगजेब के गुरु थे। वे बिहार शरीफ के निवासी थे। शेख अली ने औरंगाबाद के जंगलों में अपने मत को लोकप्रिय बनाने का कठिन कार्य किया और कुछ आदिवासियों को भी इस्लाम में दीक्षित किया। गया में खानकाह मुजाहिदिया भी एक उल्लेखनीय खानकाह है जो आज भी आबाद है।

बिहार के सासाराम जिले में कई पुरानी खानकाहें लम्बे समय से सक्रिय हैं जिनमें एक खानकाह फरीदिया भी है। भोजपुर के आरा में फरीदिया सिलसिला की मुख्य खानकाह है। शाह फरीदुद्दीन अरवी की यह खानकाह बिहार की एक लोकप्रिय खानकाह रही है। यहाँ का सिलसिला सुरकांही (मुजफ्फरपुर), गोरहू (मुंगेर) और दरभंगा में एक शाखा के रूप में गुलजार हुआ। पटना के फुलवारी शरीफ तथा जहानाबाद के काको में भी फरीदिया सिलसिला की शाखाएँ आबाद हुईं।

पटना के सिमली मुहल्ले में फैय्याजिया सिलसिले की एक महत्वपूर्ण खानकाह है। शाह गुलाम हुसैन अबुल फैय्याज अबुल उल्लाई ने इस खानकाह की नींव डाली थी। ये महत्वपूर्ण सूफी सन्त कमरुद्दीन हुसैन अजीमाबादी के खलीफा थे। अबुल फैय्याज के सुपुत्र शाह अली हुसैन बाकी तथा पोते शाह फिद हुसैन फैय्याजी के माध्यम से इस सिलसिले की शाखाएँ बंगलादेश और बर्मा तक फैलीं। खानकाह फैय्याजिया की शाखा जिला शेखपुरा के पिण्ड में भी सेवारत रही। खानकाह पिण्ड की एक शाखा रफीगंज के केराय में भी आबाद हुई। उक्त दोनों खानकाहों के कुछ सज्जादानशील सन्त लोकप्रिय लेखक, आलिम एवं शायर भी हुए जिसमें शाह कमरूल होदा तथा शाह अब्दुर्रब नाम उल्लेखनीय होगा है।





बिहार में इन्द्राबिया तथा आबादनिया सिलसिले की खानकाहें भी रोशन हुईं। यह सिलसिला कश्मीर से बिहार आया था। पटना के चौक शिकारपुर की खानकाह इन्द्राबिया 'नेपाली खानकाह' के नाम से प्रसिद्ध है। शाह शमसुद्दीन 'गौसे बंगाल', इस खानकाह से सम्बन्धित एक मशहूर व्यक्तित्व थे जिनका 'आस्ताना रानीगंज' बंगाल में विख्यात है।

जुनैदी शाखा से सम्बन्धित एक सूफी संत जो समान रूप से बिहार और बंगाल में लोकप्रिय थे, वे थे—पीर बदर आलम। वे शेख शहाबुद्दीन के पोते थे। उन्हें मखदूमेजहाँ शरफुद्दीन यहिया मनेरी के द्वारा बिहार में आमंत्रित किया गया था। उनकी बहन की शादी पंडुआ के शेख अलाउल हक के साथ हुई थी। शेख बदरुद्दीन बदर आलम की शादी एक राजपूत लड़की अब्दुल जाहिदी के साथ हुई थी। अब्दुल जाहिदी ने आगे चलकर बिहार की प्रमुख महिला सूफी संत के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त की।

पटना के सरिस्ताबाद और पटना सिटी के दूलीघाट, शीश महल में सिलसिला रशीदिया की खानकाह की नींव पड़ी। शाह अली इब्राहिम रशीदी ने इस खानकाह को आबाद किया था। ये पीरजी के नाम से विख्यात हुए। यद्यपि इस खानकाह का अस्तित्व समाप्त है किन्तु मौजूद दरगाह और अवशेष इसके अतीत की बुलन्दियों के गवाह हैं। इसी तरह बिहार के मुजफ्फरपुर में तेगिया सिलसिले की खानकाह अतीत में आध्यात्मिक सेवा के लिये विख्यात रही। हजरत शाह तेग अली मुजफ्फरपुरी समकालीन सूफियों में अपना विशिष्ट स्थान रखते थे। तेगिया सिलसिले की कई खानकाहें कई स्थानों पर आज भी आबाद हैं। उपर्युक्त दोनों सिलसिलों के अतिरिक्त बिहार में मदरिया सिलसिला भी सक्रिय था। यह एक पुराना सूफी सिलसिला था जिसकी चर्चा अबुल फजल के 'आइने अकबरी' में भी की गई है। बिहार में इस सिलसिले के लोकप्रिय संत जमालुद्दीन थे। उन्हें नालन्दा जिला के हिलसा में दफनाया गया। दरभंगा के जमान मदारी के द्वारा 1593 ई. में उनके मकबरे का निर्माण कराया गया। इस सिलसिले के एक अन्य महत्वपूर्ण संत शाह गगन दुल्हा मदारी का मकबरा बिहार शरीफ में अवशेष स्वरूप आज भी मौजूद है। आप सूफी संत हजरत जानमन जननती के प्रसिद्ध खलीफा थे और आपके द्वारा ही मदारिया सिलसिला महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सूफी बाबा मलंग तक पहुंचा।

बिहार में आनेवाले प्रारंभिक सूफी सिलसिलों में चिश्ती भी प्रमुख था। भारत में चिश्ती सिलसिला को संस्थापित करने वालों में एक महत्वपूर्ण संत मिनार हुसैन खिंगसवार भी थे। वे 12वीं शताब्दी में मोहम्मद गोरी के भारतीय अभियान के साथ आये थे। इन्हीं के तीन सम्बन्धी बिहार आये और चिश्ती

सिलसिला के आध्यात्मिक अभियान शुभारम्भ किया। खिंगसवार के भाई सैयद अहमद तथा उनके भांजे सैयद मुहम्मद बिहार आये और हाजीपुर के निकट चेचर गांव (जड़ुआ) में खानकाह की नींव डाली। किन्तु इन दोनों सूफी संतों, जो रिश्ते में मामा-भांजा थे, की हत्या हो गई। आज इनका दरगाह 'मामा-भांजा का मजार' के नाम से प्रसिद्ध। 15वीं सदी में तिरहुत के राजा शिव सिंह ने इस मजार पर यादगार मकबरे का निर्माण करवाया। 1519-32 तक बंगाल के शासक रहे नुसरत शाह की माँ एक श्रद्धालु के तौर पर यहाँ आई और एक कुएं का निर्माण करवाया। राजा मान सिंह, जो बादशाह अकबर का बिहार में सूबेदार था, ने इस दरगाह को और भी विकसित करवाया और प्रबन्धन के लिए एक जागीर मुहैया करवाई। औरंगजेब के शासनकाल में भी इस दरगाह की प्रोन्ति हेतु कार्य किये गये और एक मस्जिद बनवाई गई। 1934 के भूकम्प तक यह ऐतिहासिक स्मारक सुरक्षित था।

खिंगसवार के एक अन्य सम्बन्धी सैयद हसन, नेऊरा (पटना) में आकर बस गये। नेऊरा में इनका मजार आज भी स्थानीय लोगों की श्रद्धा का केन्द्र है। सैयद हसन के वंशज सैयद जाफर ने एक प्रसिद्ध खानकाह की नींव डाली। वे उच्च कोटि के संत होने के साथ अरबी व फारसी भाषा के ज्ञानी थे। आप कई पुस्तकों के लेखक भी थे। बिहार के प्रारम्भिक चिश्ती सूफी के रूप में शाह मुहम्मद बिहारी, सैयद ताजुद्दीन तथा अली बिहारी के नाम दर्ज हैं। अली बिहारी बाबा फरीद शकरगंज के शिष्य थे। ताजुद्दीन ने दानापुर में चिश्ती सिलसिला की लोकप्रिय खानकाह की नींव डाली।

बुजुर्ग व प्रसिद्ध चिश्ती संत ख्वाजा सैयद कुतुबुद्दीन मौदूद के वंशज भी बिहार आये और चिश्ती सिलसिले की खानकाह को आबाद करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इनकी खानकाह और दरगाह आज भी नवादा जिला के शेखपुरा खुर्द नरहट में आबाद हैं। सैयद ताज महमूद इस परिवार के सबसे महत्वपूर्ण संत हुए। इसी प्रकार बुजुर्ग सूफी संत पीर जगजोत के नाती सैयद तैय्यामुल्लाह चिश्ती ने बिहार शरीफ के चिश्तीयाना मुहल्ला में एक अन्य खानकाह की नींव डाली। इनके मुरीद एवं खलीफा शम्सुद्दीन सम्मन ने अरवल में एक प्रसिद्ध खानकाह को स्थापित किया जो आज भी आबाद है। इनके परिवार से कई नामचीन व्यक्ति भी हुए। बिहार शरीफ के तकिया मुहल्ले में जौनपुर के प्रसिद्ध सूफी बुजुर्ग शेख मुहम्मद ईसा ताज जौनपुरी के छोटे भाई शेख अहमद ईसा जौनपुरी ने अपनी खानकाह की नींव डाली। मुहम्मद ईसा ताज जौनपुरी के एक मुरीद व खलीफ शाह शम्सुल हक ने दक्षिण बाढ़ में एक खानकाह को आबाद किया। ये शाह बढ़ हककानी के नाम से प्रसिद्ध हुए। ईसा ताज जौनपुरी के एक





अन्य खलीफा सैयद जाहिद बढ़ चिश्ती की खानकाह सारण में आबाद व लोकप्रिय हुई।

चंदन शहीद नामक एक प्रारंभिक सूफी संत ने सासाराम में एक खानकाह की स्थापना की। इस संत की जीवनी एवं ऐतिहासिकता अज्ञात है। यदि बुचानन द्वारा प्रस्तुत हवाला को सच माना जाये तो यह कहना पड़ेगा कि वे बिहार के पहले सूफी संत थे और महमूद गजनी के भारत अधियान के साथ आये थे। चंदन शहीद का मजार सासाराम की पहाड़ियों पर मौजूद है, जहां उनकी हत्या हो गई थी।

विख्यात व प्रारम्भिक चिश्ती सूफी संत ख्वाजा मादूद चिश्ती के एक मुरीद खिज्र पारादोज ने बिहार शरीफ में एक खानकाह को आबाद किया। इस खानकाह की ख्याति दिल्ली तक थी। ख्वाजा निजामुद्दीन औलिया से आपके घनिष्ठ संबंध थे। विख्यात सूफी संत फरीदुद्दीन शकरगंज के वंशज शाह अमानुल्लाह ने बिहार शरीफ के भैंसासुर के निकट चिश्तियाना मुहल्ले में एक खानकाह संस्थापित की। उनके एक बेटे शेख फैजुल्लाह चिश्ती पटना चले आये और सैदपुर दीघा में रहने लगे। यहां की खानकाह के कई सूफी नामचीन हुए।

बिहार शरीफ के दायरा मुहल्ले में सैयद फजलुल्लाह गोसाई द्वारा स्थापित खानकाह भी कई पीढ़ियों तक आबाद व लोकप्रिय रही। मीर सैयद महमूद बिहारी भी उच्च कोटि के संत हुए, जो फजलुल्लाह गोसाई के पुत्र व उत्तराधिकारी थे। आपके पुत्र सैयद नसीरुद्दीन बिहारी ने भी इस खानकाह की लोकप्रियता को बरकरार रखा। नसीरुद्दीन बिहारी के पुत्र सैयद निजामुद्दीन बिहारी ने नई सराय में अपनी खानकाह को आबाद किया। यहां मस्जिद-प्रांगण में इनकी दरगाह लोक-श्रद्धा का केन्द्र है। आप अरबी-फारसी के उच्च ज्ञाता और कुछ बहुमूल्य पुस्तकों के लेखक भी थे।

बिहार शरीफ के चाँदपुरा में फरीदुद्दीन तबीलाबख्श चिश्ती की खानकाह आज भी मौजूद है। मुल्ला मुहिब्बुल्लाह बिहारी इसी खानकाह से सम्बद्ध थे, जिन्होंने 'सुल्लमुलउलूम' जैसे अद्वितीय ग्रन्थ की रचना की। इनका भी मजार खानकाह के निकट दरगाह शरीफ में मौजूद है। इस खानकाह के एक अन्य प्रसिद्ध सूफी-संत अताउल्लाह बगदादी भी थे। ये बुजुर्ग संत नूर कुत्बेआलम पंडवी के शिष्य थे। आज की तारीख में इनका मजार इतिहास के गर्त में दफन हो चुका है। इसके अतिरिक्त जहानाबाद के किन्दुई गाँव में गरीबनवाज अजमेरी के वंशजों की प्रसिद्ध खानकाह है। इसके संस्थापक ख्वाजा दाऊद चिश्ती थे। इनका मजार आज भी स्थानीय लोगों के बीच श्रद्धा का केन्द्र है। इसी तरह गया जिला के बीथो शरीफ में चिश्ती सिलसिले की एक प्रतिष्ठित खानकाह है। इसके संस्थापक शाह दूरवेश अशरफ चिश्ती थे।

16वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में तकीउद्दीन चिश्ती ने कालपी से आकर हाजीपुर के चेचर ग्राम में एक खानकाह को आबाद किया। इन्हीं के सुपुत्र कुतुबुद्दीन के नाम पर ग्राम 'कुतुबपुर चेचर' प्रसिद्ध हुआ। इन्हीं के परिवार के लोगों ने पटना सिटी की कचौरी गली में एक खानकाह को स्थापित किया। इसी प्रकार शाह करीमुदीन चिश्ती भी बिहार आये और छपरा में बस गये। आज भी छपरा का करीमचक मुहल्ला उन्हीं की यादगार है। यहां खानकाह एवं दरगाह स्थानीय लोगों की श्रद्धा के केन्द्र हैं। बिहार में शाह कयाम असदक चिश्ती ने एकंगर सराय के निकट एक खानकाह की नींव डाली जो आज पीरबीघा के नाम से विख्यात है। इस खानकाह की शाखाएँ एतबार सराय, बिहार शारीफ, बड़ोसर, सासाराम आदि में फैलीं।

जिस प्रकार प्राचीन काल में यह भूमि बौद्ध धर्मावलम्बियों एवं बौद्ध-विहारों का केन्द्र थी और इसकी अधिकता के कारण ही हिन्दुस्तान का यह भू-खण्ड 'विहार' के नाम से जाना गया उसी प्रकार मध्यकाल में यह भूमि सूफी-संतों की पसंदीदा धरती के रूप में विख्यात हुई। बिहार के लगभग हर पंचायत, कस्बे एवं शहरी मुहल्ले में किसी न किसी सूफी संत का मजार/दरगाह आज की तारीख में भी आबाद या वीरान दृष्टिगोचर होता है। इन सूफियों ने सामाजिक एवं धार्मिक सौहार्द का एक ऐसा ऐतिहासिक सिलसिला शुरू किया, जो इतिहास के लाखों थपेड़ों तथा वर्तमान की सियासी चालों के बावजूद कायम रहा। जब तक बिहार की धरती पर सैकड़ों की संख्या में फैले सूफी मजार/दरगाह मौजूद हैं, इस सामाजिक सौहार्द को नीचे के स्तर पर कदापि मिटाया नहीं जा सकता। सैकड़ों की संख्या में फैले ये मजार/दरगाह हमारी विरासत हैं जो मानों कह रहे होते हैं –

**“ जात-पात न पूछे कोय  
हर को भजे सो हर का होय।”**

**“ निहां है तेरी मुहब्बत में रंग महबूबी  
बड़ी है शान, बड़ा एहतराम है तेरा।”**



\* ख्वाजा हसन निजामी तथा \*\* हजरत महबूबे इलाही की पंक्ति ।



शेख शरफुदीन अहमद यहया मनेरी, जिन्हें समकालीन संतों ने मखदूमेजहां से नवाजा था, बिहार के सबसे लोकप्रिय सूफी संत थे। कहते हैं कि 1381ई0 में इनकी मृत्यु के समय इनके अनुयायियों की संख्या एक लाख से भी अधिक थी। मखदूमेजहां ने अपने जीवन-काल में एक हजार से अधिक पत्रों का लेखन किया, जिसमें बमुशिकल 300-400 पत्रों का ही संकलन आज हमारे पास मौजूद है, किन्तु ये सभी पत्र विलक्षण हैं और सूफी दर्शन व विचारधारा के मर्म की गहरी व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। कहते हैं कि समकालीन बादशाह से लेकर नामचीन सूफी संत तक उनके पत्र की प्राप्ति के लिये ललायित रहते थे। प्रस्तुत है उन मार्ग-दर्शक पत्रों में से मात्र दो का हिन्दी अनुवाद -

## मकतूब (खत)

### आत्मविश्वास

सूफी खुदा (ईश्वर) पर भरोसा करते हैं। ख्वाजा यहया ने कहा, “जो खुदा पर भरोसा नहीं करता, वह दिव्य प्रकाश की प्राप्ति नहीं कर सकता।” स्पष्टीकरण : खुदा अपनी उम्मीदों के अनुसार एक आदमी के साथ व्यवहार करता है। जिसे खुदा (ईश्वर) पर संदेह है, उसे कोई प्रकाश प्राप्त नहीं हो सकता है। जो उस पर भरोसा करता है, उसका वह दोस्त है और जो उस पर भरोसा नहीं करता बल्कि संदेह करता है, उसका वह दुश्मन है। संदेह शत्रुता को आर्मित्रित करता है तथा आत्मविश्वास व प्यार को कमज़ोर करता है।

हालांकि बेमेल बेबुनियादी आशा और वाजिब उम्मीद के बीच एक अंतर है। जो दिव्य आदेशों का पालन करने का प्रयास करता है, वह ईश्वरीय कृपा की अपेक्षा कर सकता है। लेकिन एक दोषी व्यर्थ की ईश्वरीय आशा और अपने चूक व गलतियों के बावजूद खुदा से नरक की छूट और आनन्द की उम्मीद करता है.... इसलिये इच्छा-प्रकृति के खातों की जांच करना और मृत्यु लोक की तैयारी करना बुद्धिमानी है। पापों के निवारण के लिये इच्छा-प्रकृति और आशा का पालन करना मूर्खता है।

### पथ के स्तम्भ

उनके शब्दों ने दिल को मंत्रमुग्ध कर दिया। उनके कर्म व्यक्तियों को मुक्त करते हैं। उनकी करूणा सार्वभौमिक है। वे खुद खाने और कपड़ों की परवाह नहीं करते। लेकिन मनुष्य के लिये खाना और कपड़े चाहते हैं। वे दूसरे की बुराई को नहीं देखते, बल्कि उनके उद्घारक के रूप में खड़े होते हैं। बुराई के बदले अच्छाई को लौटाते हैं। श्राप के बदले आशीर्वाद देते हैं। क्यों? क्योंकि अपने दिल के क्षितिज से इस दुनिया के ऊपर प्यार का बयार बहाकर उसे प्रतिरक्षित करते हैं। मित्र हो या शत्रु सूर्य के समान उनकी करूणा सब पर चमकती रहे। वे पृथ्वी के समान विनम्र हैं और सभी के पैरों की ठोकरें सहते हैं। वे किसी भी व्यक्ति के साथ शत्रुता नहीं रखते और न ही इस दुनिया के किसी चीज को अपनी मुद्रणी में कैद करते हैं। सभी जीव उनके बच्चे हैं पर वे खुद किसी के बच्चे नहीं होते हैं। पूरब हो या पश्चिम, वे सम्पूर्ण विश्व के लिये करूणा हैं। वे खुद मुक्त हो चुके हैं और सभी को एक ही जड़ की उत्पत्ति के रूप में देखते हैं.... इन गुणों की शून्यता, इस पथ का उपचार नहीं कर सकता।

एक तसव्वुफवादी (सूफी) के लिये दिल पहले होना चाहिये, न की जीभ। सांसारिक बुद्धिमान व्यक्ति के लिये जीभ पहले आती है और दिल बाद में।



# बिहार के जनप्रिय सूफी संत **जिलावार विवरण**



# पटना



प्राचीन पाटलिपुत्र की भौगोलिक स्थिति पूर्णतः वही नहीं थी जो मध्यकालीन पटना या अजीमाबाद की थी। इनमें थोड़ी भिन्नता थी। यद्यपि यहाँ दो मत नहीं कि यह क्षेत्र इतिहास के हर दौर में राजनीतिक एवं सांस्कृतिक रूप से अत्यन्त ही महत्वपूर्ण रहा। 1541 ई. में शेरशाह ने इस नगर के सामरिक महत्व एवं भौगोलिक स्थिति को ध्यान में रखकर मजबूत किलेबन्दी करवाई और राजधानी को बिहार शरीफ से पटना स्थानान्तरित कर दिया। शेरशाह द्वारा निर्मित किले की पहचान करना आज की तारीख में बहुत मुश्किल है, किन्तु उसके पश्चिम दरवाजा (प्रवेश द्वार) का अस्तित्व मौजूद है। मुगल काल में पटना बिहार प्रांत की राजधानी बनी रही। 1580 ई. में बादशाह अकबर ने यहाँ एक टकसाल (मुद्रालय) का गठन किया। औरंगजेब के पौत्र शाहजादा अजीम ने 18वीं सदी के प्रारम्भ में इस नगर का बड़े पैमाने पर नवनिर्माण करवाया। इस निर्मित उसने भारी राशि (उस समय का एक करोड़ रु.) खर्च की। उसकी मंशा अजीमाबाद को 'द्वितीय दिल्ली' बनाने की थी।

मध्यकाल में राजनैतिक सत्ता एवं व्यापारिक महत्ता का केन्द्र होने के कारण इस शहर ने सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक गतिविधियों को भी अपनी ओर आकर्षित किया। यह क्षेत्र जल्द ही सूफी आन्दोलन एवं गतिविधियों के प्रिय स्थल के रूप में तब्दील हो गया। मनेर शरीफ, फुलवारी शरीफ, कच्ची दरगाह आदि निकटवर्ती क्षेत्र तो पहले ही सूफी गतिविधियों के महत्वपूर्ण केन्द्र बन चुके थे। किन्तु घनत्व एवं गहराई की दृष्टि से सूफी आन्दोलन की लहरें अजीमाबाद में कहीं अधिक थी।

## अजीमाबाद

### हजरत दीवान शाह अर्जानी :

अजीमाबाद (पटना) के दरगाह रोड, सुल्तानगंज में अवस्थित है, हजरत दीवान शाह अर्जानी की दरगाह एवं खानकाह। शाह अर्जानी एक विलक्षण प्रतिभा वाले सूफी थे। आपने तीन महान मुगल बादशाहों को संभाला था। मुगल बादशाह अकबर ने जब शरियत के समानान्तर एक नया धार्मिक-विधान 'दीन-ए-ईलाही' प्रस्तुत किया तो आपने इसके खिलाफ अफगानिस्तान में धार्मिक मोर्चा संभाला। आपने मुगल बादशाह जहांगीर के शाही फरमान को जला डाला और नाराजगी में उन्हें कई एकड़ जमीन दान स्वरूप दिये। राजकुमार खुर्रम, जो बाद में शाहजहां के नाम से गही पर बैठा, को शाह अर्जान ने राजत्व



शाह अर्जानी का मजार, सुल्तानगंज

की प्राप्ति के निमित आशीर्वाद दिया था।

**शाह अर्जानी मूलत:** अफगानिस्तान के एक नामचीन एवं जयजयकारी कवि थे। आप इस्लाम की आध्यात्मिक शिक्षा की प्राप्ति हेतु मदीना गये। किन्तु अचानक अफगानिस्तान लौट आये क्योंकि आपको लगा मानो मुहम्मद साहब अफगानिस्तान लौटने की आध्यात्मिक सलाह दे रहे हैं। उस समय मुगल बादशाह अकबर ने शरियत के समानान्तर एक नया धर्म-विधान 'दीन-ए-ईलाही' की घोषणा कर दी थी और आपको शरियत की रक्षा करने हेतु अफगानिस्तान में आध्यात्मिक मोर्चाबन्दी संभालनी थी। तब शाह अर्जानी

अफगानिस्तान में इतने प्रमुख एवं लोकप्रिय हो गये कि उन्हे 'आफताब-ए-शरिया' तथा 'मुल्ला अर्जानी' के नाम से भी जाना जाने लगा।

शाह अर्जानी इस्लाम की शिक्षा व ज्ञान से लोगों को सम्पृक्त करने के लिए मध्य एशिया में ईरान, ईराक, सऊदी अरब आदि की यात्रा में निकल पड़े। इसी बीच आप सूफी मत के भी प्रभाव में आये और कादरिया-कलंदरिया सिलसिले में दीक्षित हुए। 1601 में आप दिल्ली, पीलीभीत, वाराणसी, सिवान होते हुए पटना पहुंचे और अन्तिम रूप से संदलपुर के उत्तरी छोर या हिस्से, जो अब सुल्तानगंज के नाम से जाना जाता है, में बस गये। आपने यहां अपनी खानकाह एवं एक मस्जिद की स्थापना की और इसे 'दर-उल-अमन' (शान्ति की जगह) की संज्ञा दी।

आज एक लिंक रोड खानकाह-ए-अर्जानी को दो हिस्सों में बांट देती है। इसकी दाहिनी तरफ कर्बला है और बायी तरफ दरगाह। एक ध्वस्त पड़ा पुराना भवन है, जो एक पुल की तरह दीखता है, जिसे स्थानीय लोग 'भान्वारी' कहते हैं। इस भवन के ऊपरी तल पर एक पुराने किस्म का हॉल है, जो उस समय खानकाह से जुड़े सूफियों के जुटने एवं विमर्श व समां करने हेतु उपयोग में लाया जाता था। 1630 ई. में शाहजहां द्वारा अपने प्रिय पीर शाह अर्जानी का एक खूबसूरत मजार बनवाया गया जो आज भी मौजूद है।

1618 ई. में हजरत दीवान शाह अर्जानी की मृत्यु अपने ही खानकाह में हो गई थी। उसके बाद इस खानकाह के दर्जन-भर से अधिक सज्जादानशीन हुए और सभी ने अपनी तरह से इस खानकाह के लिए योगदान दिया। हजरत शाह हामिद हुसैन इस खानकाह के एक अन्य प्रसिद्ध सज्जादानशीन हुए थे। आज भी इस खानकाह में मौजूद भव्य इमारतें, ईदगाह, दरगाहें, इमामबाड़ा, मदरसा, जामा मस्जिद आदि इसके स्वर्णिम अतीत को बयां करते हैं। इस खानकाह का मदरसा तथा सम्बद्ध पुस्तकालय आज भी मानवता की सेवा कर



शाह अर्जानी के मजार पर चादरपोशी

रहे हैं। यहां बच्चों को कक्षा-V तक मुफ्त शिक्षा दी जा रही है। यद्यपि संस्थान द्वारा उच्च शिक्षा (हिफज) भी दी जाती है, किन्तु वह धार्मिक व आध्यात्मिक विषयों पर होती है। मदरसे से सम्बद्ध पुस्तकालय में लगभग 500 दुर्लभ पाण्डुलिपियां व पुस्तकें संरक्षित हैं जिनमें शाह अर्जानी लिखित पुस्तक 'दीवान-ए-फारसी' एवं 'मोरात-उल-मोहककाविवन' भी शामिल हैं। शाह अर्जानी खुद 'पश्तो' जबान के कवि व विद्वान थे, जिनके अधिकांश अभिलेख यहां संरक्षित हैं।

हजरत दीवान शाह अर्जानी की याद में यहां प्रति वर्ष 5 दिनों के उर्स का आयोजन होता है। यहां के शानदार व भव्य उर्स में न सिर्फ सम्पूर्ण उत्तर भारत से लोग सम्मिलित होते हैं बल्कि कुछ श्रद्धालु विदेशों से भी होते हैं। उर्स के अवसर पर यहां एक अत्यन्त लोकप्रिय किन्तु विलक्षण 'बहु बाजार मेला' का भी आयोजन होता है जिसमें दुकानदार एवं ग्राहक दोनों सिर्फ महिलाएं ही हो सकती हैं।

## हजरत मखदूम शाह मुहम्मद मुनइम पाक :

पटना के अजीमाबाद में मीतन घाट के निकट अवस्थित जामा मस्जिद हजरत मुल्ला मीतन के प्रांगण में हजरत मखदूम मुनइम पाक का एक लोकप्रिय मजार एवं खानकाह मौजूद है। पहले यह मजार बहुत साधारण-सा था किन्तु कालान्तर में उसका कई बार निर्माण एवं पुनर्निर्माण कार्य हुआ और आज यह एक भव्य स्थापत्य में तबदील हो चुका है।

हजरत मखदूम मुनइम पाक 18वीं सदी के एक ख्याति प्राप्त सूफी थे। उनका रिश्ता नक्शबन्दिया सिलसिले के अबुल उलाइया शाखा से था। भारत में नक्शबन्दिया सिलसिला दो शाखाओं में बंट गया था। एक शाखा हजरत शेख अहमद सरहिन्दी के नाम से जुड़ा। अहमद सरहिन्दी मुजह्दिद अल्फ सानी के भी नाम से जाने जाते थे और इसी कारण से यह शाखा नक्शबन्दिया मुजह्दिद्या कहलाई। दूसरी शाखा का सम्बन्ध अमीर अब्दुल्ला एहरारी से था। आप आगरा के रहनेवाले तथा मुजह्दिद साहब के समकालीन थे। आपके नाम से ही दूसरी



हजरत मुनइम पाक का मजार तथा जामा मस्जिद, मीतन घाट

शाखा नक्शबन्दिया अबुल इलाइया कहलायी। हजरत मखदूम मुनइम पाक अबुलउलाइया शाखा के दूसरे सबसे लोकप्रिय एवं बड़ा नाम थे।

मुनइम पाक साहब का जन्म 1671 ई. में शेखपुरा (बिहार) के पचना नामी गांव में हुआ था। आप महान सूफी संत इब्राहिम बिन अदहम बल्खी के वंशज थे। मखदूम मुनइम पाक की प्रारम्भिक शिक्षा उनके पैतृक गांव में हुई। आप पटना जिला स्थित बाड़ पहुंचे और मुहम्मद कादरी की खानकाह से जुड़े गये। आपने यहां कादरिया कुटुबिया सिलसिले की शिक्षा ग्रहण की और खिलाफत भी प्राप्त कर लि। यहां से आप दिल्ली चले आये और जामा मस्जिद दिल्ली के पीछे वाले मदरसे में लगभग 40 वर्षों तक उच्च शिक्षा के छात्रों को पढ़ाया।

उस समय दिल्ली में ख्वाजा शाह मुहम्मद फरहाद की ख्याति एक बड़े सूफी संत के रूप में फैली हुई थी। आप भी इनके सान्निध्य एवं सेवा में लगभग ग्यारह वर्षों तक लगे रहे। मखदूम मुनइम पाक यहां नक्शबन्दिया अबुलउलाइया सिलसिले में दीक्षित हुए। हजरत शाह फरहाद की मृत्यु के बाद आपने उनके खानकाह का उत्तराधिकार संभाला। कई वर्षों तक लोगों का आध्यात्मिक मार्गदर्शन करने के बाद आप पटना लौट आये। यहां आपने पहले मीतन घाट के निकट मस्जिद मीर तकी में ठहरे और फिर मुल्ला मीतन की जामा मस्जिद में आ गये। आपने यहां अपनी खानकाह की नींव डाली। कई वर्षों तक यहां लोगों की आध्यात्मिक सेवा करने के बाद 103 वर्ष की उम्र में 1771 ई. में आपकी मृत्यु अपने खानकाह में हो गई। उनके अनुयायियों एवं श्रद्धालुओं ने जामा मस्जिद हजरत मुल्ला मीतन के निकट दफन किया और एक साधारण मजार का निर्माण किया जिसे कालान्तर में उनके मुरीदों एवं श्रद्धालुओं के द्वारा भव्यता प्रदान की गयी।

आपकी दरगाह एवं खानकाह-ए-मुनइमिया से सटी जामा मस्जिद हजरत

मुल्ला मीतन की ऐतिहासिक व भव्य इमारत है। बिहार में यह अकेली दो-तल्ली मस्जिद है जो मुगल काल में बनाई गई। मुल्ला मीतन औरंगजेब काल के नामचीन आलिम और सूफी थे। मुनइम पाक की दरगाह के निकट उत्तर तीरे मुनइमिया की आकर्षक इमारत है। खानकाह-ए-मुनइमिया की पुस्तकालय में 26000 से अधिक बहुमूल्य पुस्तकें तथा कई दुर्लभ पाण्डुलिपियां संरक्षित हैं। आपने अपने सिलसिले के वैचारिक एवं आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य को रेखांकित करने के लिये अग्रलिखित तीन पुस्तकों की रचना की—(क) मुकाशफाते मुनइमी, (ख) इलहामाते मुनइमी तथा (ग) मुशाहदाते मुनइम। भारत समेत पाकिस्तान, बंगलादेश, बर्मा और यहां तक कि श्रीलंका में भी इस सिलसिले से सम्बद्ध दर्जनों खानकाहें या सूफी मजार मौजूद हैं।

हिजरी कैलेंडर के रजब माह की 11 व 12 को उनका वार्षिक उर्स बड़ी भव्यता के साथ आयोजित होता है, जिसमें बिना किसी भेद-भाव के सभी धर्मों एवं वर्गों के लोग अपने प्यारे पीर को नमन समर्पित करते हैं। श्रद्धालुओं में एक उल्लेखनीय संख्या बिहार से बाहर के श्रद्धालुओं की होती है, उसमें कुछ विदेशी भी होते हैं।

### **मारुफ शाह, मंसूर शाह, मेहदी शाह और गाजी शाह :**

1704 ई. में मुगल बादशाह औरंगजेब का तृतीय पुत्र राजकुमार अजीम-उल-शान बिहार का सूबेदार बनकर पटना आया। उसने इस शहर के पुनर्निर्माण, सुदृढ़ीकरण एवं सौन्दर्यीकरण की एक महत्वाकांक्षी योजना को क्रियान्वित किया और इस नवीनीकृत शहर का अजीमाबाद की नाम पड़ा। उसकी मंशा अजीमाबाद को 'द्वितीय दिल्ली' के रूप में तब्दील करने की थी। किन्तु दुर्भाग्यवश अजीमाबाद का पूर्वी हिस्सा प्रति वर्ष आनेवाली बाढ़ से बुरी तरह प्रभावित व पीड़ित रहा।

कहते हैं कि प्रति वर्ष आनेवाली बाढ़ और उससे होनेवाले जान-माल के व्यापक नुकसान के कारण सूबेदार अजीम की रातों की नींद तक हराम हो गई थी। आम जन बाढ़ से हुए नुकसान के एवज में सूबेदार से अपनी जिजीविषा के लिये विनती करने लगे थे। प्रबुद्धजनों द्वारा भी प्राकृतिक प्रकोप से निजात दिलाने के लिये कहा जाने लगा था। कहते हैं कि एक रात जब सूबेदार गहरी



हजरत मारुफ शाह का कब्र, मारुफगंज

नींद में सोया हुआ था तब सपने में चमकदार रोशनी के साथ एक व्यक्ति अवतरित हुआ और उसने कहा “क्या सोच रहे हो राजकुमार ! तुम्हारी छावनी के बाहर चार संत मौजूद हैं जो तुम्हें और तुम्हारी जनता को बाढ़ की आपदा से होनेवाले नुकसान एवं परेशानी से स्थाई निजात दिला सकते हैं।” सुबह होते ही राजकुमार निकल पड़ा। उसने बहुत कोशिश की किन्तु उन संतों को खोज नहीं पाया।

कहते हैं कि एक रात तेज वर्षा हो रही थी, आकाश में बादल गरज रहे थे और बिजली कड़क रही थी। तेज तूफानी हवा चरम पर थी। सैनिकों के शिविर धराशायी होते जा रहे थे या फिर उड़ चुके थे। वहाँ मौजूद शाही सेना निःसहाय होकर भींग रही थी और प्राकृतिक विपदा को झेलने के अतिरिक्त उनके पास

कोई दूसरा विकल्प नहीं था। तभी सूबेदार ने देखा कि कुछ दूरी पर गंगा की रेत पर खड़ा एक शिविर इस भयानक प्राकृतिक आपदा में भी पूर्णतः सुरक्षित है। सूबेदार वहाँ गया और उसने देखा कि शिविर (टेंट) में चार सूफी संत बैठे ईश्वर की आराधना कर रहे हैं। सूबेदार उनके आगे नतमस्तक हुआ और उनसे बाढ़ रूपी आपदा से स्थायी निजात दिलाने की याचना की। हजरत ने सूबेदार की विनती कबूल कर ली, किन्तु उन्होंने शर्त रखते हुए कहा कि उनकी मृत्यु के बाद उन चारों को अजीमाबाद के चार कोनों में दफनाया जाये।

कहते हैं कि उस घटना के बाद अजीमाबाद बाढ़-दहाड़ की विभीषिका से पूर्णतः मुक्त हो गया और यह सिलसिला आज तक बहाल है। 1970 के दशक में जब पटना ऐतिहासिक बाढ़ से प्रभावित हुआ और बाढ़ का पानी शहर के काफी अन्दर तक घुस आया था, उस समय भी राजकुमार अजीम का अजीमाबाद महफूज रहा। चारों सूफी संतों की मृत्यु के बाद उनकी शर्तों के अनुसार अजीमाबाद शहर के चार कोने में दफनाया गया। हजरत मारुफ शाह को शहर के उत्तर-पूर्वी कोने पर दफनाया गया जो इलाका उन्हीं के नाम पर पटना के मारुफगंज के नाम से आज विख्यात है। आज यह पटना की सबसे बड़ी मण्डी है।



हजरत मंसूर शाह का कब्र, मंसूरगंज



हजरत मेहदी शाह का कब्र, मेहदीगंज

दूसरे हजरत मंसूर शाह को अजीमाबाद के पूर्वी-दक्षिणी छोर पर (पटना साहिब रेलवे स्टेशन के पास) दफनाया गया। उन्हीं के नाम पर वह मोहल्ला जहां वे दफनाये गये, मंसूरगंज के नाम से जाना जाता है। तीसरे संत मेहदी हसन को गुलजारबाग रेलवे स्टेशन के निकट दफनाया गया और वह मोहल्ला पटना के मेहदीगंज के नाम से आज भी जाना जाता है। चौथे हजरत नौजार गाजी शाह थे जिन्हें संभवतः पुराना सिटी कोर्ट के पास दफनाया गया। हजरत नौजार गाजी शाह के मजार की देखभाल हिन्दू-मुस्लिम संयुक्त रूप से करते हैं।

उपर्युक्त सभी सूफी संतों के मजार हिन्दू-मुस्लिम सद्भाव एवं सम्मेलन का केन्द्र हैं और उनका वार्षिक उर्स दोनों ही समुदायों के सम्मेलन एवं समन्वित संस्कृत का अद्भूत नजारा पेश करते हैं। कहते हैं कि उपर्युक्त चारों सूफी संत रात में अपनी कब्र से निकल कर अजीमाबाद की पहरेदारी आज भी करते हैं ताकि हिन्दू-मुस्लिम जन-समुदाय रात में चैन की गहरी नींद सो सकें।



हजरत नौजार गाजी शाह, सिटी कोर्ट

## बांकीपुर (पुराना)

### (क) पीर गोलक शाह

पटना रेलवे स्टेशन से 6-7 कि.मी. उत्तर गंगा नदी के निकट है, पीर गोलक शाह का मजार। पटना के जिस मोहल्ले में इनका मजार है, आज वह अपने प्रिय पीर की याद में गोलकपुर के नाम से जाना जाता है। किन्तु यह इतिहास की कैसी विडम्बना है कि जिस पीर को स्थानीय जनों ने सिर पर चढ़ा रखा था, जिनके दर्शन के बाँगर हिन्दू-मुस्लिम जनों की इबादत पूरी नहीं होती थी, उस पीर का लोकप्रिय मजार 20वीं सदी का अंत होते-होते अपना अस्तित्व खो चुका था। उसकी गाथा को गाने या बताने वाला कोई शेष नहीं रह गया था।

पीर गोलक शाह का इतिहास व जीवन वृत्त जानने हेतु आज हमारे पास ऐतिहासिक स्रोतों का अभाव है। किन्तु अंग्रेज यात्रा-लेखक बुचानन ने 19वीं सदी के प्रारम्भ में इसे एक लोकप्रिय मजार के रूप में देखा था। 1924 में



पीर गोलक शाह का मजार, गोलकपुर

मेल्लेय एवं जेम्स ने पटना गजट लिखा तो इसे एक अधूरे अवशेष के रूप में देखा व पाया था। प्रो. जाबिर हुसैन, जब 1990 के दशक में बिहार विधान सभा के अध्यक्ष थे तब उन्होंने इस गुमनाम पीर के मजार को खोज निकाला। उन्होंने इस गुमनाम पीर पर बाजाब्ता एक पुस्तक 'रेत पर खेमा' ही लिख डाली जो वर्ष 2005 में साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत भी हुई। प्रो. हुसैन ने पीर गोलक शाह के मजार का पुनरुद्धार भी करवाया।

आज यह मजार अफजल खां द्वारा निर्मित बागीचे के पश्चिमी हिस्से में मौजूद है। कहते हैं कि पीर गोलक शाह अंग्रेजी शासकों की आंखों की किरकिरी बने हुए थे। अंग्रेज शासक यह देखकर अचम्भित थे कि यह कैसा पीर है जो हिन्दू और मुस्लिम, दोनों के दिलों पर राज करता है। औपनिवेशिक शासकों के 'बांटो और राज करो' की नीति के क्रियान्वयन में यह पीर बाधक था। अचानक इनके श्रद्धालुओं एवं अनुयायियों ने एक सुबह पाया कि उनके प्रिय पीर की हत्या कर दी गयी है और उनका मृत शरीर दरगाह के एक चबूतरे

पर रखा हुआ है। संभावना यही थी कि हत्या अंग्रेज शासकों ने गोपनीय ढंग से रात के अंधेरे में करवा दी। यद्यपि यह पीर शहीद हो गया किन्तु उसके आदर्श, मूल्य व उपदेशों की हत्या नहीं की जा सकी। शताब्दियों तक इस महान पीर के मजार पर हिन्दू-मुस्लिम श्रद्धालु जुटते रहे, चादरपोशी व इबादत होती रही और श्रद्धा व मुहब्बत के दीप चलते रहे। आज भी पीर गोलक शाह का वार्षिक उर्स वस्तुतः सद्भाव व मुहब्बत के ऐतिहासिक सिलसिले का मौज-ए-दरिया बनकर प्रति वर्ष आता है।

### ( ख ) बाज बहादुर शाह

नवाब जहाँगीर कुली खां, जिन्होंने एक सूफी संत दाता बाज बहादुर शाह के रूप में ख्याति प्राप्त की, का मजार पटना के प्रसिद्ध गोलघर के पीछे मौजूद है। यद्यपि वे बंगाल के शाही परिवार से थे, किन्तु अपने नैसर्गिक प्रकृति से वे सूफी (संत) थे। वे बंगाल के प्रसिद्ध नवाब मुर्शिद कुली खां के पुत्र थे, किन्तु मानव-जाति के कल्याण एवं आध्यात्मिक मार्गदर्शन हेतु उन्होंने घुमकड़ी एवं साधु जीवन को आत्मसात किया। नवाब जहाँगीर कुली खां पटना चले आये और अंततः गोलघर के पीछे अपना स्थाई खेमा डाला। 1608 ई. में उनकी यहीं मृत्यु हो गई।

दाता बाज बहादुर ने स्थानीय जनों के दिलो-दिमाग में जगह बनाई। कहते हैं कि इनकी मृत्यु के बाद स्थानीय जन-सहयोग से इनका मजार बनवाया, यद्यपि ये खुद बंगाल के शाही परिवार से थे। इस्ट इण्डिया कम्पनी का एक अभियंता जॉन गार्सटिन भी पीर के त्याग एवं जन-प्रभाव से प्रभावित हुआ और उसने 1786 ई. में इनका एक छोटा-सा मजार बनवाया। यह मजार 10-12 फीट ऊंचे एक चबूतरे पर आज भी मौजूद है।

आज इस हजरत के श्रद्धालु न सिर्फ स्थानीय लोग हैं बल्कि देश के अन्य हिस्सों में भी देखे जा सकते हैं। उनके उर्स के अवसर पर बहुतेरे श्रद्धालु



پاکیستان، نیپال، بانگلادesh آدی سے بھی آتے ہیں۔ پ्रत्येक ور्ष تृतीय اسلامی مہینہ کے 8-9 کو ٹنکے عرصے کا آیوے جن ہوتا ہے، جس میں سبھی دھرمیں کے لوگوں کا سماگم ہوتا ہے اور سامپ्रदायیک سوہنہ کے ملے میں تਬدیل ہوتا ہے۔

داتا باج بہادر شاہ کے جیون ورثت پر ایک پوستک خودا بخشن اوریینٹل پبلک لائبریری، پٹنا د्वारा प्रकाशित کی گئی ہے۔ اس مजार کے پربन्ध میں ایک پوستکالیہ بھی ہے جس میں کुछ اत्यन्त دُر्लभ پوستک سंरक्षیت ہیں۔

### (ग) پیر مسعود شاہ

سید شاہزاد گولام سفیدر جنہیں پیر مسعود شاہ کے نام سے بھی جانا جاتا ہے، کا مجرا 1757ء سے پٹنا عच्च ن्यायालیہ کے پیछوے پورے چور پر مسجد ہے۔ 1916ء میں جب پٹنا عच्च ن्यायालیہ کی س्थापනہ ہوئی تو مجرا کے عصر-پشیم چور پر پرتی پडی جمین کو اধیغراہیت کیا گیا

اور تباہ سے مجاہر اور کورٹ کے بیچ ویવاد بنانا رہا۔ کہتے ہیں کہ جب پٹنا عصی ن्यायालیہ بن رہا تھا تو مجاہد دن میں ن्यायालیہ کی چار دیواری بناتے اور رات میں وہ ڈھ جاتی تھی۔ اک رات نیماں کرتا ہے کورٹ کی نیما میں ہجرت اور تباہ کر دیا اور انہوں نے کہا، ”اپنی نیماں سیما کو چوٹا کرو اور تباہ کر دیا۔“ انتہا: کورٹ کی سیما چوٹی کر لی گئی کیونکہ دنیوں کے بیچ ویવاد کا انت نہیں ہوا۔ کبھی اत्यधیک بھیڈ کو لے کر، کبھی لاؤڈسپیکر کے اسٹیمائل پر تو کبھی کسی اتنی ویسا کو لے کر ویવاد ہو جاتا ہے۔ مجاہر پرباندھکوں کا کہنا ہے کہ کورٹ نے ہمے شارمنہ نہیں دی ہے بلکہ کورٹ ہماری جمین پر بسایا ہے۔

بہرہاں ہجرت سید شاہزاد گولام شاہ کا مجاہر پٹنا کا ایک اتنی لوکپری� مجاہر ہے۔ یہاں راجنےتا، وکیل، شیکھ، چاڑا، آم ستری-پورٹھ تथا فیلمی سیتارے بھی ہبادت کرنے آتے رہتے ہیں۔ تیسرا اسلامی مہینہ کے



مسعود شاہ کے مجاہر کا پریشان دروازہ، پٹنا ہائیکورٹ



पीर मुगाद शाह के मजार पर इवादत

16 से 19 तक वार्षिक उर्स का यहाँ आयोजन होता है। उर्स के अवसर पर हजारों-हजार श्रद्धालु अपने प्रिय पीर के मजार पर अपनी हाजिरी दर्ज करते हैं। उर्स का पूरा कार्यक्रम एक मेले में तब्दील हो जाता है और रात-भर लोगों के आने-जाने का सिलसिला जारी रहता है। किन्तु पटना के बेली रोड में अवस्थित होने के कारण यहाँ चादरपोशी करने वाले अकीदतमंदों में नेताओं की संख्या अपेक्षाकृत अन्य मजार से अधिक रहती है।

## मनेर शरीफ

मनेर शरीफ का नाम बिहार में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थल के रूप में दर्ज है। मुस्लिम रहस्यवादी एवं सूफी आन्दोलन की शुरुआत बिहार में मनेर शरीफ से ही हुई थी। धार्मिक सौहार्द के सिलसिले एवं ऐतिहासिक इमारतों की दृष्टि से इस महान स्थल को पर्यटन के निमित विकसित करने की काफी संभावनाएँ हैं। यह स्थल वर्तमान में पटना शहर से लगभग 20 कि.मी. पश्चिम एक कस्बे के रूप में मौजूद है।

आमतौर पर बख्तियार खिल्जी के आक्रमण को बिहार में मुसलमानों के आगमन का प्रस्थान बिन्दु माना जाता है। किन्तु बख्तियार खिल्जी के आगमन के पहले ही यहाँ मुसलमानों की कुछ बस्तियाँ आबाद हो चुकी थीं। बिहार में मुसलमानों के अस्तित्व का पहला ऐतिहासिक प्रमाण मनेर से प्राप्त होता है। यह क्षेत्र कन्नौज के गढ़वाल राजपूत शासक के अधीन था और राजा मनेरियार उनके स्थानीय प्रतिनिधि व प्रशासक थे। एक स्थानीय सूफी संत हजरत मोमिन आरिफ का राजा मनेरियार के साथ किसी विषय को लेकर गहरा विवाद खड़ा हो गया था। जेरूसलम के संत ताज फकीह सूफी संत हजरत मोमिन आरिफ की मद्द में आ खड़े हुए। ताज फकीह 12वीं सदी के उत्तरार्द्ध में एक संत के रूप में भारत आये थे। उन्होंने एक छोटे से युद्ध में मनेर के स्थानीय शासक राजा मनेरियार को पराजित कर उनकी स्थानीय सत्ता पर कब्जा कर लिया। मध्यकालीन इतिहासकार प्रो. इमियाज अहमद ने ताज फकीह को 'योद्धा-संत' की संज्ञा दी है। लगभग 1180 ई. में ताज फकीह ने मनेर में एक आध्यात्मिक केन्द्र (खानकाह) की स्थापना की। संभवतः यह पूर्वी भारत में पहला सूफी आध्यात्मिक केन्द्र (खानकाह) था। इसके अतिरिक्त उन्होंने बख्तियार खिल्जी के बिहार आगमन के पूर्व तक मुस्लिम राजनीति का नेतृत्व भी संभाले रखा।



छवस्त पुराना किला, मनेर शरीफ



शेख कमालुद्दीन की 'बड़ी दरगाह'

संत ताज फकीह ने मनेरवासियों के दिलों पर विजय प्राप्त की और साम्प्रदायिक सौहार्द का सिलसिला प्रारम्भ किया। उनके अनुयायियों एवं पुत्रों ने पूरे बिहार में आध्यात्मिक रोशनी फैलाने का मिशन चलाया। बड़े बेटे इसराईल मनेर की खानकाह एवं ताज फकीह के उत्तराधिकारी हुए जबकि मंझले पुत्र इस्माईल तथा छोटे पुत्र अब्दुल अजीज को क्रमशः उत्तर एवं दक्षिण बिहार में मिशन चलाने का कार्यभार सौंपा गया। शेख इसराईल की मृत्यु के बाद उनके बड़े पुत्र शेख कमालुद्दीन यहिया मनेरी को खानकाह का उत्तराधिकार मिला। आप विख्यात सूफी संत शेख शहाबुद्दीन सुहरावर्दी के

खलीफा थे। आपने एक महान व लोकप्रिय संत के रूप में अपना नाम इतिहास में दर्ज करवाया। समकालीन सूफी संतों के साथ आपके घनिष्ठ संबंध थे। बलबन काल के विख्यात विद्वान अशरफुद्दीन अबू तवामा सोनारगांव जाते हुए मनेर में आपके अतिथि महीनों बने रहे। 1291 ई. में मखदुम यहिया मनेरी की मृत्यु के बाद इनके बड़े बेटे शेख जलालुद्दीन ने उनका उत्तराधिकार संभाला।



शेख कमालुद्दीन यहिया मनेरी का मजार, 'बड़ी दरगाह'



उनके द्वितीय पुत्र शेख शरफुद्दीन यहया मनेरी ने अपनी खानकाह बिहार शरीफ में स्थापित की। शेख शरफुद्दीन यहया मनेरी ने न सिर्फ बिहार बल्कि सम्पूर्ण उत्तर भारत के अग्रणी सूफी संतों में अपना स्थान बनाया। शेख जलालुद्दीन के सुपुत्र भी शरफुद्दीन यहिया मनेरी के मुरीद हुए और तब से मनेर की प्राचीन खानकाह भी अध्यात्म की फिरदौसी रंग में रंग गई। मनेर शरीफ की खानकाह के उत्तराधिकारियों में मखदूम शाह दौलत मनेरी अकबर एवं जहांगीर काल के विख्यात सूफी हुए। उनके मजार पर जहांगीर काल का तत्कालीन गवर्नर (सूबेदार) इब्राहिम खान काकर ने एक शानदार मकबरे का निर्माण करवाया। आज की तारीख में यह छोटी दरगाह के नाम से विख्यात है। अकबर का अजीज अबदुरहीम खानखाना भी उनका मुरीद था। मखदूम शाह

दौलत मनेरी का यह मकबरा न सिर्फ बिहार बल्कि सम्पूर्ण पूर्वी भारत में मुगल स्थापत्य का बेजोड़ नमूना है। इस मकबरे को सूबेदार इब्राहिम खाँ काकर ने फतेहपुर सिकरी की तर्ज पर 1613 ई. में बनवाया था।

मनेर शरीफ में मुगलकाल तथा पूर्व मुगल-काल के अनेक स्थापत्य हैं। इनमें से छोटी दरगाह एवं 'बड़ी दरगाह' का विशेष महत्व है। दोनों दरगाह एक बड़े तालाब के पास एक-दूसरे से विपरीत दिशा में अवस्थित हैं। तालाब के पूरब दिशा में बड़ी दरगाह अवस्थित है, जो शेख यहया मनेरी का मकबरा है। यद्यपि यह छोटी दरगाह से न तो बड़ी है और न ही ज्यादा प्रभावशाली ही। चारदीवारी से घिरे इस मकबरे के पश्चिमी हिस्से में एक मस्जिद है। मकबरे





की चारदीवारी के अन्दर बहुत सारी कब्रें हैं जिनमें एक राजकुमार ताजुदीन खांडगह की भी है जो संभवतः महमूद गजनी परिवार का वंशज था। किन्तु सारे मध्यकालीन स्थापत्य व निर्माण की वर्तमान स्थिति संतोषप्रद नहीं है और उस (संत की पुण्य तिथि) के विशेष अवसर को छोड़कर वहां आमतौर पर चहल-पहल नहीं रहती है।

लेकिन छोटी दरगाह की स्थिति अच्छी है। यह इमारत भारत सरकार के पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा संरक्षित है और उसके द्वारा यहां पुनरुद्धार के कई कार्य किये गये हैं। राज्य सरकार ने भी यहां पर्यटन की दृष्टि से विकास के कुछ महत्वपूर्ण कार्यों को किया है। चुनार के मटमैले लाल बलुआ पत्थर से निर्मित इस ऐतिहासिक इमारत को यद्यपि सूफी संत शाह दौलत की कब्र को मकबरा के बीच-बीच रखकर बनाया गया है किन्तु पश्चिम में मुगल सूबेदार इब्राहिम खाँ काकर की भी कब्र मौजूद है जो सूफी संत शाह दौलत के प्रति

उनकी अथाह श्रद्धा एवं सान्निध्य को इंगित करता है। इस मकबरे के साथ एक मस्जिद भी सम्बद्ध है जो चारदीवारी के पश्चिम-मध्य में अवस्थित है। इब्राहिम खाँ ने मस्जिद की दीवारों पर फारसी के कई दोहों को भी अंकित करवाया है।

बिहार में सूफी आन्दोलन को जन्म देने तथा क्रमबद्ध गति प्रदान करनेवाली इस भूमि को तथा यहाँ के महान सूफी संतों को कई बादशाहों, शासकों, प्रशासकों, सुप्रतिष्ठित व्यक्तियों एवं विद्वानों की इबादत, हाजिरी, सहयोग या फिर इनायतें प्राप्त हुईं, जिनमें सूबेदार इम्ब्राहिम खाँ के अतिरिक्त सुल्तान मुहम्मद-बिन-तुगलक, सिकन्दर लोदी, बाबर, अब्दुर्रहमान खानखाना आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

## जेठुली

पटना शहर के पश्चिम-दक्षिण सीमा पर स्थित है जेठुली ग्राम। इसी जेठुली ग्राम के मौजा में स्थित है पीर जगजोत का मजार। यह मजार कच्ची दरगाह के नाम से विख्यात है। पीर जगजोत बिहार के प्राचीनतम् सूफी संतों में से एक थे। बिहार के सूफी आन्दोलन को नई ऊर्जा एवं उल्लेखनीय विस्तार देने में उनकी भूमिका अविस्मरणीय है। आपका संबंध सूफियों के सुहरावर्दी सिलसिले से था। इसी सिलसिले से कालान्तर में एक शाखा फिरदौसिया का बिहार में विकास हुआ जिन्होंने बिहार के समग्र सूफी आन्दोलन में अग्रणी भूमिका अदा की।

पीर जगजोत का वास्तविक नाम हजरत शेख शहाबुद्दीन था। इनका जन्म सन् 1174 ई. में मध्य-एशिया के काशगर में हुआ था। इनके पिता मुहम्मद ताज काशगर के सुल्तान थे। शाही परिवार में जन्म लेने के कारण इनकी परवरिश शानो शौकत से हुई। राजदरबार से सम्बद्ध एक विद्वान हजरत अबुल हसन मदनी को इनकी प्राथमिक शिक्षा की जबाबदेही दी गई। प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद आप हजरत मखदूम नज़मुद्दीन से औपचारिक शिक्षा ग्रहण

करने के लिये संजार चले आये। अपने गुरु की अच्छाई, सादगी, सच्चाई एवं इबादत से आप इतने प्रभावित हुए कि वापश काशगर जाने के बदले बहुत दिनों तक गुरु की सेवा में ही तल्लीन रहे।

**अंततः** इन्हें पिता के आदेश पर काशगर लौटना पड़ा। पहले तो इनकी शादी कर दी गई और उसके बाद इन्हें राज्य के मुख्य न्यायाधीश (काजी-उल-काजात) के ओहदे पर बैठा दिया गया। पिता की मृत्यु के बाद शहाबुद्दीन को हुक्मत की बागडोर भी संभालनी पड़ी। किन्तु कुछ ही वर्षों के बाद उन्होंने राज-पाट की बागडोर त्याग करके पत्नी के साथ आध्यात्मिक ज्ञान की खोज में निकल पड़े। एक देशज स्रोत के अनुसार आपने बगदाद (इराक) के एक प्रसिद्ध सूफी शहाबुद्दीन सुहरावर्दी से दीक्षित हुए। गुरु की सलाह पर आप प्रसिद्ध शहर बल्ख एवं लाहौर होते हुए आप बिहार आये और वर्तमान जेठुली ग्राम के पश्चिमी सिवाना पर बस गये। उस समय बिहार में बख्तियार खिल्जी का शासन था और इस इलाके में मुसलमानों का तुरंत प्रवेश ही हुआ था। आपने यहां जन-सहयोग से एक खानकाह एवं एक मस्जिद की स्थापना की। आपकी चार बेटियां हुई और सभी बिहार के सूफी आन्दोलन के इतिहास में सौभाग्यशाली हकीकत बनीं। उन्होंने बिहार और बंगाल के ऐसे सपूतों को जन्म दिया जो सबके सब आश्चर्यजनक रूप से ज्ञान एवं अध्यात्म के क्षेत्र में अग्रणी रहे। मखदूमेजहां शेख शरफुद्दीन यहया मनेरी, मखदूम अहमद चिरमपोश,



बिहार में सूफी आन्दोलन / 44

मखदूम तय्यमुल्लाह सफेदबाज, मखदूम हुसैन धुकड़पोश सभी आपके सगे नाती थे और सबके सब अद्वितीय। आपकी एक बेटी बीबी कमाल ने जहानाबाद जिले के काको ग्राम में सूफीवाद के प्रसार का दायित्व भली-भाँति संभाला। वे बिहार की शायद प्रथम महिला सूफी संत थी। इसके अतिरिक्त उनके दर्जनों रक्त-संबंधियों, मुरीदों तथा अनुयायियों ने बिहार में सूफी आन्दोलन के दीप को प्रज्वलित कर रखा था। पीर जगजोत की कीर्ति इतनी गौरवशाली एवं अविस्मरणीय थी कि शताब्दियों बाद भी उसे भुलाया नहीं जा सका है।

हजरत शेख शहाबुद्दीन ने स्थानीय स्तर पर ईश्वरीय मुहब्बत, सामाजिक सद्भाव एवं जन-कल्याण की बेपनाह चांदनी बिखेरी जिसमें सबसे अधिक हिन्दू-जन ही सम्पृक्त हुए। हिन्दुओं ने अपने इस पीर को 'जगजोत' की उपाधि दी और आत्मसात किया। ज्ञातव्य है कि 'जग जोत' शब्द की जड़ें हिन्दी और संस्कृत जबान में मिलती हैं, अर्बी व फारसी में इसका कोई अस्तित्व नहीं देखने को मिलता है। स्वाभाविक है कि इस उपाधि या उपनाम को उनलोगों ने ही दिया होगा जो हिन्दी या संस्कृत बोलते होंगे और वे अनिवार्य रूप से हिन्दू थे। पीर जगजोत का स्थानीय हिन्दू-जनों पर इतना जबर्दस्त प्रभाव था कि इस संदर्भ में कई किंवदन्तियां तथा चमत्कारिक कथाएं आज भी इस क्षेत्र में प्रचलित हैं।

कहते हैं कि एक स्थानीय बूढ़ी औरत जो प्रतिदिन शेख शहाबुद्दीन के लिए दही लेकर आती थी, अचानक बीमार पड़ गई और आना बन्द कर दिया। वह बीमारी के कारण मरणासन्न स्थिति में पड़ी हुई थी। एक दिन उसके घर शेख शहाबुद्दीन तशरीफ ले गये और घर के बाहर से उसे पुकारा। वह अपने घर में मुर्दा पड़ी थी, किन्तु हजरत की आवाज सुनते ही स्थानीय लोक-भाषा में "जी उठली सरकार" कहते हुए दौड़कर बाहर आई। तब से ही उस क्षेत्र का नाम "जी उठली" पड़ गया जो कालान्तर में रूपान्तरित होकर 'जेठुली' हो गया।



1247ई० में जनप्रिय पीर जगजोत की मृत्यु अपनी ही खानकाह में हो गई। जीवन में सादगी से अभिप्रेरित इस आदरणीय पीर की इच्छा थी कि उनका मजार कच्चा व साधारण रखा जाये। इसलिये इनका मजार आज भी कच्चा है और 'कच्ची दरगाह' के नाम से मशहूर है। कच्ची मिट्टी का बना यह लोधा (मजार) पिछली कई शताब्दियों से उसी तरह अपनी जगह पर विराजमान है। यह मजार गंगा नदी से बहुत दूर नहीं है। लोगों के कथनानुसार, हर साल गंगा का जलस्तर बढ़ता है, बाढ़ भी आती है, किन्तु मजार की थोड़ी भी क्षति नहीं हुई।

यह मजार आज भी जन-सामान्य की जियारतगाह है। यहां न सिर्फ वार्षिक उर्स के अवसर पर बल्कि प्रतिदिन विभिन्न धर्मों के लोग अपने श्रद्धा सुमन अर्पित कर और दुआ मांगते देखे जा सकते हैं। यहां हर वृहस्पतिवार को मेला लगता है जिसमें सभी समुदाय एवं वर्गों के लोग शताब्दियों से शिरकत करते आ रहे हैं। पीर जगजोत के प्रति हिन्दुओं की श्रद्धा की हकीकत यह है कि अपने त्योहारों के अवसर पर भी वे इस मुस्लिम संत को नहीं भूलते। चैत नवमी और दशहरा के अवसर पर यहां विशेष रूप से मेले का आयोजन होता है।

पीर जगजोत की कच्ची दरगाह के बगल में उनकी पत्नी का मजार है। कहते हैं कि चबूतरे के नीचे उस मालिन की कब्र है जो उन्हें रोजाना दही पहुंचाया करती थी। मजार से थोड़ी ही दूरी पर हजरत आदम चिश्ती का मजार है। आदम चिश्ती के छोटे बेटे हजरत हमीदुदीन चिश्ती पीर जगजोत के छोटे दामाद भी थे। पीर जगजोत की मृत्यु के बाद उनकी खानकाह का उत्तराधिकार उनके दामाद हमीदुदीन को ही मिला था। यह क्षेत्र पक्की दरगाह कहलाता है क्योंकि उनका मजार पक्की ईंटों का बना हुआ है।

## दानापुर

18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में दानापुर के शाहटोली में अपने समय के महान सूफी संत हजरत मखदूम सैयद शाह यासीन दानापुरी की एक प्रसिद्ध खानकाह आबाद हुई थी। उनके पिता सैयद शाह मुहम्मद बासिर स्वयं एक नामचीन सूफी संत थे। उनके पूर्वज कालपी से प्रस्थान करके पटना की कचौड़ी गली में आबाद हुए थे। मुहम्मद वारिस के पिता, नाना, ससुर, आदि भी सूफी थे। मुहम्मद वारिस अपने नाना हजरत शाह अब्दुल माजीद चिश्ती नौआबादी के मुरीद व खलीफ थे। उनके सिलसिला तथा खानकाह का उत्तराधिकार उनके पुत्र हजरत सैयद शाह यासीन ने सम्भाला, किन्तु उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र दानापुर को बनाया और एक लोकप्रिय खानकाह की स्थापना की। उनके पोते हजरत सैयद शाह गुलाम हुसैन दानापुरी मखदूम मुनेम पाक के खानकाह में दीक्षित हुए और खिलाफत भी प्राप्त की। किन्तु 19वीं सदी के प्रारम्भ में गुलाम हुसैन ने चाकन्द में अपनी खानकाह को आबाद किया। वहां उनकी 1838ई. में मृत्यु हो गई। दानापुर के शाहटोली में इसी सिलसिले की एक अन्य खानकाह चिश्तिया निजामिया भी आबाद हुई। इस खानकाह के सज्जादानशील का सिलसिला आजतक जारी है।

दानापुर के शाहटोली मुहल्ले में खानकाह सज्जादिया भी आबाद हुई। इस खानकाह के पुराने सूफियों में हजरत सैयद शाह सज्जाद और हजरत सैयद शाह मुहम्मद कासिम हजरत अजीमाबादी से दीक्षित हुए और उन्हें खिलाफत भी प्राप्त हुई। दानापुर की इस लोकप्रिय खानकाह के मुरीदों में मौलवी गुलाम इमाम शाहीद, अकबर इलाहाबादी, निसार अकबराबादी इत्यादि विख्यात हुए। हजरत शाह अकबर अबुल उल्लाई इस खानकाह के सबसे ख्याति प्राप्त सज्जादानशील थे। आज भी यह खानकाह आबाद है और धार्मिक-सामाजिक सद्भाव एवं मानव-कल्याण के निरपेक्ष केन्द्र के रूप में अपना सक्रिय अस्तित्व बनाये हुए है। इसी खानकाह की एक लोकप्रिय शाखा इलाहाबाद के निकट हुजरा में आबाद हुई।

मुल्तान से बड़े पीर शेख अब्दुल कादिर जीलानी के वंशजों में एक कादरी परिवार बिहार पहुंचा और पटना के मुगलपुर मुहल्ले में आबाद हुआ। कालान्तर में इसी परिवार के एक वंशज कमरूद्दीन हुसैन दानापुर प्रस्थान कर गये। इस परिवार ने शाहटोली में एक खानकाह को आबाद किया। आपने हजरत कमरूद्दीन हुसैन मुनएमी दानापुरी के नाम से ख्याति अर्जित की। इन्होंने मुनएमिया सिलसिले में शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की थी और इसी सिलसिला के वैचारिक मिशन को आगे बढ़ाया। इस परिवार में शेख अब्दुल कादिर जीलानी



बिहार में सूफी आंदोलन / 46

के तबर्कात भी कई पीढ़ियों से सुरक्षित चले आ रहे हैं जिसमें खिकी (लम्बा चोंगा), नालौन (जूते) और कमन्दे-वहदत (कमर में बांधने वाला डोरा) आज भी प्रचलित है। कमरूद्दीन हुसैन मुनएमी दानापुरी के वंशज आज भी यहां मौजूद हैं। वर्तमान में यह खानकाह मुनएमिया कमरिया मीठन घाट, पटना सिटी में समिलित हो चुकी है।

## फुलवारी शरीफ

पटना शहर से कुछ ही कि.मी. पश्चिम में अवस्थित है, फुलवारी शरीफ कस्बा। कहते हैं कि प्राचीन काल में इस कस्बे में मौर्य शासकों की फुलवारी थी, इसलिये इसका नाम फुलवारी पड़ा। एक अन्य स्रोतानुसार यहां फूलों की बड़े पैमाने पर खेती एवं कारोबार होता रहा था, इसलिये इस कस्बे या इलाके को फुलवारी के नाम से जाना गया। बहरहाल, इस कस्बे या इलाके ने मध्यकाल में सूफी संतों को अपनी ओर आकर्षित किया। 14वीं शताब्दी से ही यहां सूफी संतों के सक्रिय होने के सबूत मिलने लगते हैं। मखदूम मिन्हाजुद्दीन रास्ती संभवतः प्रथम सूफी संत थे जो बाहर से आकर इस कस्बे में सपरिवार बसे थे। आप मखदूम-जहाँ शेख शरफुद्दीन यहया मनेरी के मुरीद व खलीफा थे। आपके वंशजों में कई नामचीन व्यक्तियों का आविर्भाव हुआ।

मुगल बादशाह हुमायूं का एक मंत्री अताउल्लाह जाफरी, जो स्वयं पैगम्बर हजरत मुहम्मद का एक रक्त-सम्बन्धी था इसी फुलवारी कस्बे में सपरिवार आ बसा। अताउल्लाह जाफरी के वंशजों में यद्यपि कई विद्वान एवं महत्वपूर्ण व्यक्तियों का जन्म हुआ, किन्तु 18वीं शताब्दी में हजरत पीर मुजीबुल्लाह कादरी फुलवारी के इस परिवार का संभवतः सबसे लोकप्रिय व्यक्ति था, जिसके कारण फुलवारी को अभूतपूर्व ख्याति प्राप्त हुई।

कम उम्र में ही पिता की मृत्यु हो जाने के कारण पीर मुजीबुल्लाह कादरी

का प्रारम्भिक लालन-पालन एवं शिक्षण अपने सगे फूफा बुरहानुदीन जाफरी के संरक्षण में हुआ। बुरहानुदीन स्वयं एक सूफी संत थे। दुर्भाग्यवश कुछ वर्षों के बाद इनकी भी मृत्यु हो गयी। किन्तु इनके पुत्र इमामुदीन कलन्दर जाफरी ने मुजीबुल्लाह को सहयोग व संरक्षण जारी रखा। इमामुदीन भी एक प्रतिबद्ध सूफी थे और इनके मार्गदर्शन व संरक्षण में मुजीबुल्लाह ने भाषा, धर्म व दर्शन की शिक्षा प्राप्त की। अपने संरक्षक, गुरु एवं रिश्ते में फुफेरे भाई इमामुदीन से स्वीकृति प्राप्त करके मुजीबुल्लाह बनारस प्रस्थान कर गये। यहां इन्होंने हजरत मौलाना मुहम्मद वारिस कादरी के एक प्रिय शिष्य के रूप में सात वर्षों तक सेवा की। वारिस कादरी बनारसी एक नामचीन सूफी होने के साथ-साथ शरियत एवं अरबी-फारसी के विद्यात विद्वान् भी थे। मुजीबुल्लाह ने यहां वारिसया ओवैसिया एवं दरूदिया सिलसिला में पारंगतता हासिल की। सन् 1711 में आपने अपने गुरु से खिलाफत का सनद प्राप्त किया। किन्तु इसके पूर्व आपने अपने संरक्षण एवं पूर्ववर्ती गुरु इमामुदीन कलन्दर फुलवारबी से भी सिलसिला-ए-आलिया कादरिया कुतबिया मुजीबिया में खिलाफत प्राप्त करने का गौरव हासिल कर लिया था।

सन् 1711 ई. में जब इमामुदीन गम्भीर बीमारी से ग्रस्त हो गये तो आप उनकी खिदमत में फुलवारी लौट आये। 1712 में इमामुदीन का इन्तकाल हो गया। उसके बाद आपने फुलवारी को ही अपना स्थायी निवास एवं कर्मभूमि बनाया। आपने खानकाह-ए-मुजीबिया, फुलवारी शरीफ की मस्जिद, खिलवत तथा एक मदरसे की स्थापना की। जल्द ही फुलवारी शरीफ अरबी एवं फारसी के साथ-साथ आध्यात्मिक शिक्षा के एक विद्यात केन्द्र में तब्दील हो गया। आपकी प्रसिद्धि सूबे की सीमा पार कर सम्पूर्ण उत्तर भारत में फैल गई। आपके श्रद्धालुओं एवं अनुयायियों का हुजूम उल्लेखनीय रूप धारण करता गया जिसमें न सिर्फ मुसलमान थे, बल्कि एक बड़ी संख्या हिन्दुओं की भी थी। मुगल शासक ही नहीं बल्कि कई हिन्दू राजे व जर्मींदार भी आपके



खानकाह-ए-मुजीबिया की भव्य इमारत, फुलवारीशरीफ

खानकाह में हाजिर हुए। आप अपने मिशन से सम्बद्ध मुरीदों एवं श्रद्धालुओं की एक बड़ी जमात छोड़ गये।

1861 ई. में मुजीबुल्लाह कादरी फुलवारी की मृत्यु हो गयी किन्तु उन्होंने धार्मिक व सामाजिक सौहार्द का जो दरिया बहाया, वह आज भी प्रतिवर्ष आयोजित होने वाले उनके उर्स के अवसर पर प्रवाहमान होकर हिलों मारने लगता है। उर्स के अवसर पर न सिर्फ हजारों-हजार स्थानीय हिन्दू-मुस्लिम लागों की भागीदारी होती है बल्कि भारत के दूर-दराज से भी बड़े पैमाने पर लोग आते हैं। यहां तक कि बंगलादेश, पाकिस्तान, ईरान, सऊदी अरब आदि कई देशों से भी आकर श्रद्धालु अपना स्नेह एवं हाजिरी दर्ज करते हैं। इस अवसर पर मुहम्मद साहेब की दाढ़ी के बाल का रंगीन कपड़ों में एक दर्पण-बॉक्स में रखकर श्रद्धालुओं के दर्शनार्थ रखा जाता है।

पीर मुजीबुल्लाह एक सूफी संत के अतिरिक्त अरबी एवं फारसी के महान



बिहार में सूफी आंदोलन / 48



हजरत पीर मुजीबुल्लाह के मजार का बाह्य परिसर, फुलवारी शरीफ

लेखक भी थे। बिहार में सक्रिय रहे कई सूफी सिलसिले पर आपकी गहरी जानकारी थी। आपके द्वारा स्थापित मदरसे में अरबी एवं फारसी की उच्च शिक्षा का क्रम आज भी जारी है। मदरसे के पुस्तकालय (दार-एस-उलूम मुजीबिया) में आज 10 हजार से अधिक दुर्लभ पुस्तकें हैं, जिनमें से 5500 से अधिक अरबी या फारसी में हस्तलिखित पाण्डुलिपियों की शक्ल में है। औरंगजेब के समय का हस्तलिखित पवित्र ग्रन्थ कुरान इस पुस्तकालय की एक महत्वपूर्ण धरोहर है। विशेष रूप से हदीस, कुरान, ताफसीर, शरीयत के अतिरिक्त फुलवारी शरीफ खानकाह से सम्बद्ध लगभग सभी महत्वपूर्ण सूफियों से सम्बन्धित पुस्तकों की मौजूदगी इस पुस्तकालय को विशिष्ट स्वरूप प्रदान करती है। यही कारण है कि यहां देश-विदेश के शोधकर्मी, विद्वत्-जन अपने अनुसंधान कार्य के सिलसिले में आते रहते हैं।

मखदूम सैयद मिन्हाजुद्दीन रास्ती फुलवारी शरीफ आकर बसने वाले संभवतः पहले सूफी संत थे। इनका जन्म ईरान के गिलान प्रांत में हुआ था। आप सुल्तान फिरोज तुगलक के समय 1360ई. में भारत आये थे। कहते हैं कि रास्ती अपने पिता के निर्देश पर अपनी किशोरावस्था में बिहार शरीफ पहुंचे और आध्यात्मिक शिक्षा व मार्गदर्शन के लिये मखदूम शरफुद्दीन अहमद यहया मनेरी की मुहिम से सम्बद्ध हुए। इनका असली नाम सैयद मिन्हाजुद्दीन था और ‘रास्ती’ (सत्य पर चलने वाला) उपनाम। आप लम्बे समय तक बिहार शरीफ में मखदूमेजहां के मुरीद रहे, इसलिये इन्हें मखदूम के नाम से भी जाना जाने लगा। आप आध्यात्मिक गुरु शरफुद्दीन अहमद यहया मनेरी की सलाह पर फुलवारी शरीफ प्रस्थान कर गये। मिन्हाजुद्दीन रास्ती ने अपने जीवन का बहुमूल्य 25 वर्ष फुलवारी शरीफ को दिया। आपने जन-सामान्य के बीच इतनी लोकप्रियता हासिल की कि आप मानवता के कल्याण एवं आध्यात्मिक मार्गदर्शन के प्रतीक बन गये। मानवता की सेवा, साम्राज्यिक सद्भाव तथा सभी वर्गों के प्रति सम्मान से सम्पूर्णता आपके विचार आपकी मृत्यु के बाद भी आपके शिष्यों ने फुलवारी शरीफ के फिजा में प्रवहमान रखा। 1385ई. में मखदूम सैयद मिन्हाजुद्दीन रास्ती ने फुलवारी शरीफ की अपनी खानकाह में अपनी



आखिरी सांस ली।

उनकी दरगाह आज भी लोगों की आस्था का केन्द्र बनी हुई है। यह दरगाह पटना के प्रसिद्ध महावीर कैंसर संस्थान से बमुशिकल 500 मीटर की दूरी पर अवस्थित है। स्थापत्य की दृष्टि से भी यह दरगाह एक सुन्दर नमूना है। महावीर कैंसर संस्थान में आनेवाले रोगी और उनसे सम्बद्ध अभिभावक मखदूम बाबा के दरबार (मजार) में रोग-मुक्ति की दुआ मांगने आते हैं। इस दरगाह का पानी बड़ा पवित्र माना जाता है। कहते हैं कि इस दरगाह का पानी इतना पवित्र एवं चमत्कारी है कि इसका सेवन करनेवाला व्यक्ति किसी भी तरह के रोग-टोना से मुक्त रहेगा।

इस दरगाह का सालाना उर्स बारहवें इस्लामिक माह के 18वें दिन आयोजित होता है। उर्स के अवसर पर श्रद्धालुओं की एक बड़ी जमात भागीदार होती है और देखते-देखते उर्स का कार्यक्रम एक मेला, एक उत्सव में तब्दील हो जाता है। इस अवसर पर खानकाह मुजीबिया फुलवारी शरीफ के सज्जानशीन के मार्गदर्शन में कई तरह के धार्मिक कृत्य किये जाते हैं।



## नालंदा



## बिहार शरीफ

1198 ई. में बख्तियार खिलजी के आक्रमण के द्वारा जब तुर्क मुसलमानों ने पूर्वी भारत में प्रवेश किया तब उन्होंने बिहार शरीफ और उसके आस-पास के क्षेत्रों में अत्यधिक संख्या में बौद्ध विहारों की मौजूदगी को पाया। अतः उन्होंने इस क्षेत्र को 'अर्ज-ए-बिहार' अर्थात् 'बिहारों की जमीन' की संज्ञा दी। इसके पूर्व पाल शासकों के समय में बिहार शरीफ और उसके आस-पास का क्षेत्र बौद्ध शिक्षा, ज्ञान एवं विहारों के लिये प्रसिद्ध था और उदंपुरी के नाम से जाना जाता था। तुर्कों ने सर्वप्रथम विश्व प्रसिद्ध नालंदा विश्वविद्यालय समेत बड़े पैमाने पर बौद्ध विहारों को नष्ट किया और दूसरे बख्तियार खिलजी ने पूर्वी भारत पर अपने आक्रमण अभियान हेतु इसे आधार भूमि अर्थात् प्रांतीय राजधानी बनाई। धीरे-धीरे यह क्षेत्र मुस्लिम सत्ता एवं संस्कृति का वाहक बनता चला गया। सूफी संत भी इस क्षेत्र के प्रति आकर्षित हुए और कालान्तर में बड़ी संख्या में सूफी संतों की खानकाहों की नींव इस क्षेत्र में पड़ी। उल्लेखनीय है कि सुप्रसिद्ध सूफी संत मखदुम-ए-जहाँ शरफुद्दीन यहया मनेरी की भी खानकाह की नींव बिहार शरीफ में ही पड़ी।

यद्यपि 16वीं सदी के मध्य में प्रसिद्ध अफगान शासक शेरशाह ने बिहार सूबा (प्रांत) की राजधानी पटना स्थानान्तरित कर दी, किन्तु सूफियों की राजधानी बिहार शरीफ ही बनी रही। आज की तारीख में बिहार शरीफ का शायद ही कोई मुहल्ला या आस-पास का कोई कस्बा होगा, जहाँ किसी नामचीन या गुमनाम सूफी संत का मजार न हो। वस्तुतः 19वीं सदी में 'बिहार' से 'बिहार शरीफ' नाम का रूपांतरण यहां सूफी खानकाहों की अत्यधिक मौजूदगी एवं सूफी संस्कृति के गहरे प्रभाव का परिणाम था।

बिहार शरीफ के उत्तरी हिस्से में अवस्थित है मुरादपुर मुहल्ला, जहाँ बड़े चिश्तानी का मजार एक प्राचीन स्मारक के रूप में मौजूद है। बड़े चिश्तानी प्रथम मुस्लिम संत थे जिन्होंने इस क्षेत्र में इस्लाम के प्रसार के लिये काम किया और उन्होंने स्थानीय शासक को रूपान्तरित करने में भी सफलता पाई। इस मजार के संदर्भ में सर्वप्रथम 'बुचानन' ने बताया कि इसका निर्माण एक मन्दिर पर किया गया था। 1336-37 के स्थानीय शिलालेख के अनुसार बड़े चिश्तानी के मजार का निर्माण मुहम्मद-बिन तुगलक के एक निकट सम्बन्धी मुबारक मुहम्मद ने करवाया था।

बिहार शरीफ शहर के निकट एक एकान्त पहाड़ पर सैयद इब्राहिम मलिक बयां का मकबरा है।  
बिहार में सूफी आदोलन / 50

इन्होंने मुहम्मद-बिन तुगलक और उसके उत्तराधिकारी फिरोज-बिन तुगलक के समय बिहार के एक मक्ता (गवर्नर) एवं सैफ-अद दौलत के रूप में अपनी सेवा प्रदान की। इतिहासकार इम्तियाज अहमद के अनुसार, सैयद इब्राहिम मलिक बयाँ एक 'योद्धा संत' थे। उनके इस मकबरे को उनके एक पुत्र सैयद दाऊद ने बिहार शरीफ की इस एकान्त पहाड़ी पर बनवाया था। संभवतः उन्होंने अपना निवास इस पहाड़ी पर ही बना रखा था और जनश्रुतियों के अनुसार इस पहाड़ी से ही आधी रात को जब सारा शहर गहरी नींद में सो जाता था, वे पूरी संवेदना के साथ शहर की पहरेदारी करते थे। सैयद इब्राहिम मलिक बयाँ और उनके मजार के साथ कई लोकप्रिय कहानियाँ भी यहां दफन हैं। जैसे एक बड़े सेना नायक और प्रशासक होने के बावजूद वे एक संत भी थे। उनके संत (पीर) होने के कारण बिहार शरीफ के इस पर्वत का नाम पीर पहाड़ी पड़ा, मुसलमानों की एक खास जाति 'मलिक' मलिक बयाँ का संतति होने का दावा करती है, आदि-आदि। बहरहाल इस इलाके के हिन्दू और मुसलमान समान रूप इनके मजार पर प्रार्थना करने इस विश्वास के साथ जाते हैं कि उनकी मन्त्रों जरूर पीर बाबा पूरी करेंगे। यह बिहार में



हजरत इब्राहिम मलिक बयाँ के मजार, पीर पहाड़ी से शहर का परिदृश्य



हजरत इब्राहिम मलिक बयाँ का मजार, पीर पहाड़ी

सामाजिक-धार्मिक सौहार्द, उदारता एवं सहानुभूति की परम्परा का गवाह है।

यह मजार दिल्ली के अलाई दरवाजा तथा तुगलक स्थापत्य कला से काफी प्रभावित नजर आता है। इस मकबरे में मौजूद कब्र का अत्यधिक लम्बा-चौड़ा फैला स्वरूप एक अत्यन्त ही विलक्षण विशेषता है।

बिहार शरीफ के कागजी मोहल्ले में एक अन्य मध्यकालीन स्मारक सूफी-संत हजरत अहमद सीस्तानी का मजार है। यद्यपि इस मजार से कोई शिलालेख सम्बद्ध नहीं रहने तथा ऐतिहासिक स्रोत के अभाव के कारण इसके निर्माण की तारीख सुनिश्चित करना संभव नहीं है, किन्तु मखदुमेजहाँ के इस मजार पर स्वयं जाने का प्रमाण मौजूद है। इस मजार की स्थापत्य कला पर 14वीं शताब्दी की तुगलक-कला का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। मलिक बयाँ की कब्र की अपेक्षा यहां आकार (लम्बाई, चौड़ाई) कम है, किन्तु यह स्तूप की तरह बनाया गया है जो बौद्ध प्रभाव को इंगित करता है। यह मजार आज भी लोकप्रिय है और यहां हिन्दू-मुस्लिम श्रद्धालुओं के आने का सिलसिला बरकरार है।

हजरत अहमद शरफुद्दीन यहया मनेरी जिन्हें मखदूमे जहाँ ने नाम से नवाजा गया है बिहार के ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण उत्तर भारत के महानतम सूफी

संतों में से एक थे। इनका जन्म 1262 ई. में मनेर शरीफ में हुआ था। आप प्रसिद्ध सूफी संत मखदूम यहया मनेरी के द्वितीय पुत्र थे। इन्होंने आध्यात्मिक ज्ञान की जिज्ञासा में सोनारगांव (बंगाल) से लेकर दिल्ली तक की यात्रा की। आप वर्षों भोजपुर एवं राजगीर के जंगलों एवं बागीचों में भटकते रहे और सुदूर ग्रामीणों को मार्ग-दर्शन एवं अध्यात्म की रोशनी दी। अंत में मखदूमेजहाँ शरफुद्दीन यहया मनेरी बिहार शरीफ में बस गये और यहीं अपनी खानकाह स्थापित की। उस दौर में मखदूमेजहाँ के कई शिष्यों की खानकाहें भी ईश ज्ञान के प्रसार में व्यस्त थीं। इनमें शेखपुरा में मखदूम शोऐब-बिन जलाल मनेरी, चरवावाँ में हजरत मौलाना आमूँ, फुलवारी शरीफ में हजरत मिन्हाजुद्दीन रास्ती चौसा में काजी शम्सुद्दीन तथा गया के हजरत अलामुद्दीन गेसूदराज नीशपुरी की खानकाहें महत्वपूर्ण थीं।

1380 ई. में मखदूमेजहाँ की मृत्यु बिहार शरीफ में अपने द्वारा स्थापित खानकाह में हो गई। कहते हैं कि इनकी मृत्यु के समय इनके शिष्यों की संख्या एक लाख से भी अधिक थी। कई बादशाहों तथा शाही प्रशासकों ने या तो स्वयं इनके मजार पर हाजिरी दी या फिर अपने शाही फरमानों के द्वारा आर्थिक मदद, सहयोग या श्रद्धा-सुमन अर्पित किये। ऐसे शख्सों में मुहम्मद-बिन



बड़ी दरगाह का प्रवेश द्वार



मखदूमेजहाँ शरफुद्दीन यहया मनेरी का मजार, बड़ी दरगाह

तुगलक, फिरोजशाह तुगलक, सिकन्दर लोदी, शेरशाह, सुलेमान केरारानी, जहांगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब, शाह आलम द्वितीय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनकी कब्र राजगीर-बिहार शरीफ रोड पर पंचाना नदी के दक्षिण किनारे मौजूद है और 'बड़ी दरगाह' के नाम से जानी जाती है। यह दरगाह भारतीय उप-महाद्वीप के महत्वपूर्ण सूफी केन्द्रों में से एक है जो पाकिस्तान से लेकर बंगलादेश तक के श्रद्धालुओं को अपनी ओर आकर्षित करती रही है। इसके उर्स के अवसर पर हिन्दू-मुस्लिम श्रद्धालुओं की भारी भीड़ इकट्ठी होती रही है और सामाजिक-धार्मिक सम्मेलन का शानदार नजराना पेश होने का ऐतिहासिक सिलसिला चलता रहा है।

शिलालेखीय तथा अन्य स्रोतानुसार इस दरगाह का निर्माण एवं पुनर्निर्माण तुगलक काल से लेकर शाहजहाँ के काल तक कई बार हुआ। कई बादशाहों की मदद मिली। इस दरगाह का पूरा ढांचा आज भी काफी सुरक्षित एवं बेहतर स्थिति में है। क्रमिक मरम्मती एवं पुनरुद्धार के बावजूद इस मजार के मौलिक

स्वरूपों के नामोनिशान को काफी हद तक बनाये रखा गया है।

मखदूमेजहाँ शारफुद्दीन यहया मनेरी के अपने मौसेरे भाई मखदूम अहमद चिरपोश सुहरावर्दी की बिहार शरीफ के अम्बेर मोहल्ले में स्थित खानकाह भी उस दौर में कम आकर्षण का केन्द्र नहीं थी। सुल्तान फिरोज तुगलक ने मखदूमेजहाँ के अलावा इनके खानकाह में भी हाजिरी दी थी। आप इतने लोकप्रिय एवं प्रतिष्ठित थे कि बल्ख के शाही परिवार से ताल्लुकात रखनेवाले मौलाना शम्सुद्दीन बल्खी अपने पूरे परिवार के साथ मखदूम अहमद चिरपोश की सेवा में आ गये थे। दुर्भाग्यवश इस महान सूफी संत का विस्तृत जीवनवृत्त लिखने के लिये हमारे पास विश्वसनीय स्रोत का बेहद अभाव है। उनका मजार अच्छे पत्थरों से ढंका हुआ है जिसपर शानदार नक्काशी की गई है। यह मजार



छोटी दरगाह, चिरपोश सोहरावर्दी, अम्बेर



चिरपोश सोहरावर्दी का कब्र, अम्बेर, बिहार शरीफ

बौद्धकला का एक शानदार नमूना प्रतीत होता है जिसमें बौद्ध परम्परा के अनुसार बिहार तक जाने के लिए विशिष्ट किस्म का प्रवेश द्वार बनाया जाता था। आज इसे छोटी दरगाह के रूप में जाना जाता है।

मखदूमेजहाँ से लाभान्वित होने के लिए पानीपत से एक प्रसिद्ध सूफी संत बिहार शरीफ आये और यही के हो के रह गये। बिहार शरीफ के मोड़ा तालाब में स्थापित आपकी खानकाह लम्बे समय तक विख्यात रही। इस खानकाह को लोदी काल में तैयब दानिशमन्द जैसा सज्जादानशीन मिला, जिनकी प्रसिद्ध शेरशाह के काल में पूरे उत्तर भारत में फैल गई। शेरशाह के उत्तराधिकारी सलीम शाह इनसे समय-समय पर आध्यात्मिक सलाह भी लेते रहे थे। आप एक अच्छे लेखक भी थे और काजी शहाबुद्दीन दौलताबादी की पुस्तक

‘इरशाद’ पर लिखी गयी आपकी टीका लम्बे समय तक विभिन्न मदरसों में टेक्स्ट बुक के रूप में पढ़ाई जाती रही।

मखदूमेजहाँ से बड़ी घनिष्ठता रखनेवाले सूफी संत जहानियाँ जहाँगशत के खलीफा हजरत दाऊद कुरैशी ने बिहार शरीफ के काशी तकिया में एक खानकाह स्थापित की किन्तु अब सिर्फ जीर्ण-शीर्ण मजार शेष है। बिहार शरीफ में कुछ ऐसे खानकाहों की भी नींव पड़ी जो इतिहास के पन्नों में गुम हो गई और अब उनके भग्नावशेष मात्र रह गये हैं। ऐसे ही एक प्राचीनतम सूफी संत खिज्ज़ पारादोज का पता चला जो प्रख्यात चिश्ती सूफी संत ख्वाजा मौइनूद्दीन चिश्ती के मुरीद थे। आप की ख्याति दिल्ली के महान सूफी संत निजामुद्दीन औलिया तक थी। निजामुद्दीन औलिया से जुड़े एक अन्य सूफी संत नूर कुत्बे आलम पंडवी थे, जिनके दो शिष्यों- हजरत अताउल्लाह बगदादी तथा फरीदुद्दीन तवीला बख्शा ने अपनी खानकाह बिहारशरीफ में स्थापित की। फरीदुद्दीन तवीला बख्शा की खानकाह तो बिहार शरीफ के चाँदपुरा में मौजूद है किन्तु अताउल्लाह बगदादी के मजार का अवशेष ही शेष है और सज्जादानशीनी का क्रम वर्षों पहले समाप्त हो चुका है।

इसी प्रकार बिहार शरीफ के भैंसासुर के निकट चिश्तियाना में हजरत शाह अमानुल्लाह द्वारा स्थापित खानकाह थी। वे बाबा फरीद के वंशज थे। किन्तु अब केवल उनका मजार ही शेष है। उसी प्रकार जौनपुर के सूफी संत शेख अहमद इंसा जौनपुरी ने अपनी खानकाह काशी तकिया मुहल्ले में स्थापित की थी। अब केवल दरगाह शेष है। उसी प्रकार मीर सैयद यासीन गुजरात से बिहार शरीफ पथारे और खंडक मुहल्ले में एक खानकाह स्थापित की, किन्तु अब केवल मजार का अवशेष है। बिहार शरीफ के दायरा मुहल्ले में फजलुल्लाह गोसाई की खानकाह कई पीढ़ियों तक बड़ी प्रसिद्ध रही, किन्तु अब केवल मजार ही शेष है।

फजलुल्लाह गोसाई के एक वंशज सैयद निजामुद्दीन की दरगाह नई सराय में अपनी मस्जिद के प्रांगण में करबला के समीप है। उसी प्रकार बिहार शरीफ से कुछ कि.मी. की दूरी पर अवस्थित एकंगरसराय (जिला-नालंदा) के निकट पीरबोधा में क्याम असदक चिश्ती ने एक लोकप्रिय खानकाह की स्थापना की जो आज भी विख्यात है और सज्जादानशीन का क्रम जारी है। नालन्दा जिले के इसलामपुर में भी कई पुरानी खानकाहें थीं जिनमें से एक खानकाह कादरिया आज भी मौजूद है। इसी प्रकार नालन्दा जिले के राजगीर में शतारी सिलसिले की एक प्राचीन खानकाह की स्थापना अली मंझन शतारी ने मिल्की मुहल्ले में की थी। मंझन एक सूफी संत होने के साथ-साथ हिन्दी सूफी प्रेमाख्यान परम्परा के कवि भी थे। मधुमालती उनकी सुप्रसिद्ध कृति है। उनकी रचना शेरशाह के पुत्र व उत्तराधिकारी सलीम शाह के शासन-काल में की गई थी। वे सत्तारी सिलसिला के सुप्रसिद्ध पीर शेख मुहम्मद गौस के प्रिय शिष्य व खलीफा थे। राजगीर की इस खानकाह से आस्था रखनेवालों में मुगल बादशाह फरूखसियर भी था। आज की तारीख में यहाँ फरूखसियर द्वारा बनाई मस्जिद तथा संत का मजार ही शेष है, अन्यथा वीरानगी ही वीरानगी है। बिहार शरीफ से कुछ ही कि.मी. की दूरी पर अवस्थित नालंदा जिले के सिलाव कस्बे में मदारी सिलसिला के सूफियों का एक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है। यहाँ के पुराने मदारी सूफी संतों को लोकप्रिय भाषा में ‘जमान जाति’ कहा जाता रहा है जो ‘जानेमन जन्नाति’ का अपभ्रंश हैं। यहाँ की दरगाह एवं मस्जिद की स्थिति अत्यन्त दयनीय है और अपना पुराना जनाकर्षण खो चुकी है। बिहारशरीफ और नालन्दा जिले में मौजूद सूफी संतों के मजार/दरगाह/खानकाह का यह एक छोटा-सा विवरण है। बिहारशरीफ तथा उसके आस-पास का शायद ही कोई ऐसा मुहल्ला या कस्बा हो जहाँ किसी-न-किसी सूफी संत की ऐतिहासिक भूमिका न रही हो।

## वैशाली



## हाजीपुर

हाजीपुर वर्तमान में वैशाली जिले का मुख्यालय है। प्राचीन काल से ही यह क्षेत्र सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं राजनैतिक गतिविधियों की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा है। विश्व में सर्वप्रथम गणराज्य की स्थापना इसी क्षेत्र में हुई थी और वह भी छठी शताब्दी ईसा पूर्व में। हाजीपुर से कुछ ही कि.मी. की दूरी पर है कुण्डग्राम, जहाँ 540 ई.पू. में जैनियों के परम आदरणीय भगवान महावीर का जन्म हुआ था। किन्तु यह भूमि न सिर्फ भगवान महावीर की बल्कि भगवान बुद्ध की भी कर्मभूमि रही। मध्य-काल में जब बिहार में सूफी परम्परा ने दस्तकें दी तो इस क्षेत्र ने भी इस निमित उर्वरक भूमि प्रदान की। हाजीपुर की विशिष्ट भौगोलिक स्थिति होने के कारण इस पर प्रभावशाली नियंत्रण हेतु बंगाल और दिल्ली के शासकों के बीच संघर्ष होता रहा। सुल्तान हाजी इल्यास शाह, जो 1345-58 तक बंगाल का शासक था, ने गंडक-गंगा के संगम पर एक ऊंचे स्थान पर किले का निर्माण करवाया। 360 एकड़ में फैला यह किला यद्यपि आज अपना अस्तित्व लगभग खो चुका है, किन्तु हाजी इल्यास शाह की मृत्यु के बाद यह शहर उसके नाम से हाजीपुर कहलाया।





भारत में चिश्ती सिलसिले को संस्थापित करनेवालों में एक महत्वपूर्ण सूफी मिनार हुसैन खिंगसवार भी थे। 12वीं शताब्दी में मोहम्मद गोरी के भारतीय अभियान के साथ आप भारत आये थे। इन्हीं के तीन सम्बन्धी बिहार आये और चिश्ती सिलसिले के आध्यात्मिक अभियान का यहां शुभारम्भ किया। खिंगसवार के भाई सैयद अहमद तथा उनके भाजे सैयद मुहम्मद बिहार आये और हाजीपुर के निकट चेचर गांव में खानकाह की नींव डाली। किन्तु दोनों सूफी संतों की जड़ुआ में हत्या हो गई। एक बहुप्रचलित किंवदन्ती के अनुसार जब दोनों (मामा-भांजा) अपने आज्ञाकारी घोड़े पर सवार होकर चेचर से जड़ुआ जाने को थे तभी अज्ञात दुश्मन ने इतना सिर कलम कर दिया। सिर तो चेचर में रह गया किन्तु आज्ञाकारी घोड़े ने उनके सिर कटे शरीर को जड़ुआ पहुंचा दिया। इसलिये मामा-भांजा दोनों का मजार चेचर में है और जड़ुआ में भी। एक अन्य किंवदन्ती के अनुसार, उनकी (मामा-भांजा की) मृत्यु के लगभग दो सौ साल बाद नेपाल के राजा सवेस सिंह ने जड़ुआ में एक

तालाब खुदवाया। उसी दौरान वहां दो शरीर जमीन में गड़े मिले। उन्होंने एक का कब्र जड़ुआ में तथा दूसरी चेचर में बनवायी। किन्तु ऐतिहासिक रूप से प्रमाणित बात यह है कि तिरहुत के राजा शिव सिंह ने 15वीं सदी के पूर्वार्द्ध में दोनों जगहों पर यादगार मकबरे का निर्माण करवाया। 16वीं सदी के पूर्वार्द्ध में बंगल के सुल्तान ने यहां एक कुआं और सराय का निर्माण करवाया। राजा मान सिंह, जो बादशाह अकबर का बिहार में सूबेदार था, ने इस दरगाह को और भी विकसित किया और प्रबन्ध के लिए एक जागीर भी मुहैया करवाई। औरंगजेब के शासन काल में भी दरगाह की प्रोन्ति हेतु कार्य हुए और एक खुली मस्जिद (कनाती) बनवाई गई। किन्तु 1934 के भूकम्प ने यहां के मजार एवं मस्जिद, दोनों को काफी क्षति पहुंचायी। द्वितीय इस्लामिक माह के 14वें दिन जड़ुआ शरीफ में प्रतिवर्ष उर्स का आयोजन होता है जिसमें बड़ी संख्या में लोगों की भागीदारी होती है।

बिहार में सूफी आन्दोलन के पितामह (प्रणेता) ताज फकीह के दूसरे सुपुत्र हजरत शेख इस्माईल के वंशज और कई सिलसिलों की शिक्षा से सम्पृक्त हजरत शाह फैजुल्लाह, जो काजिन उला शतारी के नाम से मशहूर हुए की खानकाह हाजीपुर से कुछ कि.मी. उत्तर बनिया बसाढ़ में स्थापित हुई। आप बिहार में शतारी सिलसिला के संस्थापक हजरत शेख अब्दुल्लाह शतार के प्रसिद्ध खलीफा थे। 15वीं शताब्दी में आपके द्वारा संस्थापित खानकाह शतारी सिलसिला का केन्द्र बिन्दु बना। दुर्भाग्यवश इनका विवाद एक मस्जिद स्थापित करने के सिलसिले में चेर राजा से हो गया, जिसने इनकी हत्या कर दी। आज शतारिया सिलसिला की लगभग सभी खानकाहों में हजरत काजिन उला शतारी की शिक्षा का प्रकाश फैला है। इनकी कृति 'मादनुल असरार' शतारिया सिलसिले की सबसे प्रामाणिक पुस्तक है। काजिन उला शतारी के सुपुत्र अब्दुल फतह हिदायतुल्लाह सरमस्त हाजीपुर के निकट तनगौल में बस गये। ये शतारी सिलसिले के एक अन्य लोकप्रिय संत हुए। प्रसिद्ध मुगल

बादशाह हुमायूं आपका प्रसिद्ध अनुयायी था और अध्यात्मिक, धार्मिक एवं राजनैतिक विषयों पर आपसे सलाह लिया करता था। 1538 ई. में अब्दुल फतह हिदायतुल्लाह सरमस्त की मृत्यु इनके अपने खानकाह (तनगौल) में हो गई। आपका मजार आज भी श्रद्धालुओं के बीच काफी लोकप्रिय है।

## जन्दाहा

अब्दुल फतह हिदायतुल्लाह सरमस्त के भतीजे एवं खलीफा मखदूम शाह अली शतारी ने हाजीपुर से लगभग 32 कि.मी. पूर्वोत्तर में अवस्थित वर्तमान जन्दाहा कस्बे में शतारी सिलसिले की एक अन्य महत्वपूर्ण खानकाह की नींव डाली। उस समय यह जगह वीरान थी, किन्तु शाह अली के खानकाह के आबाद होते ही चर्चा में आई और कालान्तर में हजरत के उपनाम (जन्दाहा) से प्रसिद्ध हुई। मुगलवंश की उन्नति के काल में इस खानकाह ने भी बेहद उन्नति की और उसके पतन के साथ ही यह खानकाह भी अपनी पुरानी चमक खोती चली गयी। किन्तु यह खानकाह आज भी आबाद है और सज्जादानशीनी का सिलसिला जारी है। ‘मनाहिजुश्शतार’ नामक पुस्तक के लेखक पीर इमामुद्दीन शतारी इसी खानकाह के सज्जादानशीन हजरत रूकनुद्दीन शतारी के मुरीद और खलीफा थे। ‘मलफूजाते रूकनिया’ के नाम से इमामुद्दीन सत्तारी ने जन्दाहा के प्रसिद्ध सूफी संत एवं अपने गुरु शेख रूकनुद्दीन के प्रवचनों को



राजगीर में रहकर संकलित किया। यह हस्तलिखित कृति न सिर्फ शतारिया सिलसिले का एक अन्य महत्वपूर्ण मार्गदर्शक रोशनी है बल्कि तत्कालीन सामाजिक-आध्यात्मिक इतिहास का भी गवाह है। जन्दाहा की खानकाह-ए-शतारिया आज भी आबाद है और सज्जादानशीनी का क्रम जारी है। उस के अवसर पर यहां भी श्रद्धालुओं की भीड़ इकट्ठी होती है और धार्मिक सहिष्णुता एवं सद्भाव की दरिया बहती है।

शेरशाह द्वारा स्थापित सूर-सम्प्राञ्च के पतन के बाद अफगान सरदार सुलेमान केरारानी ने हाजीपुर में अपनी स्वतन्त्र सत्ता की घोषणा कर दी थी। उसी काल में बाकरी सैयदों का एक प्रतिष्ठित परिवार कालपी से आकर हाजीपुर से लगभग 20-22 कि.मी. पूरब गंगा नदी के निकट चेचर गांव में आबाद हुआ और अपनी खानकाह की नींव डाली। इसके संस्थापक सैयद तकीउद्दीन चिश्ती थे। केरारानी शासकों ने इस खानकाह को एक बड़ी जायदाद समर्पित की और काफी इज्जत नवाजी। सैयद तकीउद्दीन की मृत्यु के बाद उनके सुपुत्र सैयद कुतुबुद्दीन इस खानकाह के सज्जादानशीन हुए। उनके नाम से ही यह गांव ‘कुतुबपुर चेचर’ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। केरारानी वंश के शासन के पतन के साथ यह खानकाह भी अपनी महत्ता खोता चला गया। अंततोगत्वा यह सूफी परिवार वहाँ से प्रस्थान करके पटना सिटी की कचौरी गली में आबाद हुआ। अब केवल उनके मजारों के अवशेष ही शेष हैं।



## सिवान



कहते हैं कि एक सूफी संत शाह अर्जान के नाम पर सिवान का नाम पड़ा। संत शाह अर्जान का ही अपभ्रंश रूप सिवान है। आप पटना में सम्मानित थे, किन्तु एकांतवास हेतु आपने सिवान शहर से लगभग 15 मील उत्तर लहरी गांव को चुना। आपने यहाँ एक 'चिला' अर्थात् 40 दिनों का धार्मिक- आध्यात्मिक चिन्तन-मनन का कार्यक्रम किया। आपने आध्यात्मिक विचारों की शिक्षा एवं प्रसार के लिए यहाँ एक खानकाह की भी स्थापना की, जिसके निमित बादशाह औरंगजेब से भी आर्थिक सहायता आपको प्राप्त हुई। 17वीं शताब्दी के अंत में जो उच्च सम्मान आपको मुगल बादशाह से प्राप्त हुआ, आज तक वह सम्मान व श्रद्धा स्थानीय मुस्लिम समुदाय द्वारा आपके मजार को प्राप्त हो रहा है। सूफी शाह अर्जान की लहरी दरगाह के निर्माण में लकड़ी कार्य का अत्यधिक प्रयोग इसे विशिष्ट स्वरूप प्रदान करता है। आपका दरगाह न सिर्फ मुस्लिम समुदाय के बीच बल्कि हिन्दुओं के बीच भी आस्था, श्रद्धा एवं अराधना का एक महत्वपूर्ण केन्द्र है।

उसीप्रकार सिवान रेलवे स्टेशन से लगभग 3-4 कि.मी. दूर सिवान जिले के मोहिउद्दीनपुर (अलीगंज) में सैयद मख्बूद मशहूद दुलैन तथा सैयद मख्बूद मशहूद शाह अब्दुल माजीद का मजार जनास्था का एक अन्य महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय केन्द्र है। ये दोनों 1660 ई. में मदीना से सिवान पहुंचे और आखिरकार यहाँ बस गये। अब्दुल माजीद शाह दुलैन के सगे छोटे भाई थे। यद्यपि ये दोनों इस्लाम की शिक्षाओं के प्रचार-प्रसार के लिए यहाँ आये थे किन्तु उन्होंने मानव जाति की सेवा एवं कल्याण को प्राथमिकता दी और लोगों के बीच लोकप्रियता हासिल की। शाह दुलैन और अब्दुल माजीद ने क्रमशः 1702 एवं 1703 में यहाँ अपनी आखिरी सांस ली।

इस मजार परिसर में उपर्युक्त दोनों सूफी भाइयों के अतिरिक्त एक अन्य कब्र ग्वाला शाह की भी मौजूद है। ग्वाला शाह उनके समर्पित शिष्यों में से एक थे। हिन्दू होने के बावजूद वहीं उन्हें भी दफनाया गया क्योंकि यही उनकी आखिरी इच्छा थी। आज की तारीख में यह मजार जितना लोकप्रिय मुस्लिम समुदाय के बीच है, उतना ही हिन्दुओं के बीच भी। उस तथा मुहर्रम के अवसर पर हिन्दू और मुस्लिम, दोनों समुदायों के लोगों की भारी भीड़ इकट्ठी होती है। खासकर मुहर्रम के 10वें दिन यहाँ 13 हिन्दू-मुस्लिम गांवों का जनसमुदाय लाठी, भाला, तलवार आदि भांजने के कौशल का प्रदर्शन करते हुए यहाँ इकट्ठा होता है। इस अवसर पर विजेताओं के बीच बड़ी धूमधाम से पुरस्कारों का वितरण किया जाता है। यह मजार सिवान रेलवे स्टेशन से लगभग 3 कि.मी. दूर अलीगंज (सिवान) के मोहिउद्दीनपुर कस्बे में अवस्थित है।

1891 ई. में सिवान की पुण्यभूमि पर एक अन्य सूफी संत हजरत सैयद शाह अमजद अली, जो सुलतान रंगीला के नाम से लोकप्रिय हुए, का आगमन हुआ। उनके आध्यात्मिक विमर्श से न सिर्फ तत्कालीन उत्तर भारत बल्कि मध्य एशिया भी गुलजार हुआ। इनके पूर्वज मूलतः अफगानिस्तान के रहनेवाले



खानकाह-ए-अमजदिया, सीवान

थे और महमूद गजनवी (971-1030 ई.) के साथ हिन्दुस्तान आये किन्तु सुल्तान रंगीला का जन्म उत्तर प्रदेश के मैनपुरी जिले में हुआ था। सिवान में इनका आगमन अपने आध्यात्मिक गुरुदेव ख्वाजा कुतुब के निर्देश पर हुआ था। यहां आपने अपनी जीवन शैली एवं आध्यात्मिक उपदेशों से मानव-कल्याण की मुहिम में लग गये। यहां उन्हें सैयद अली असद का साथ मिल गया जो मूलतः उत्तर प्रदेश के मेरठ के रहनेवाले थे और पारवाले बाबा के नाम से जाने जाते थे। दोनों सूफी संतों ने मिलकर 1893 में सिवान के स्टेशन रोड के दक्षिण टोले में खानकाह-ए-अमजदिया की नींव डाली। दुधिया सफेदी से सराबोर दिखनेवाली यह खानकाह एक पुराना मध्यकालीन स्मारक

प्रतीत होती है। सुल्तान रंगीला एवं पारवाले बाबा की क्रमशः 1910 एवं 1929 में यहां मृत्यु हुई। इनकी याद में यहां प्रतिवर्ष हिन्दी माह के चैत की 27 तारीख एवं बैसाख की 2 तारीख को उर्स का आयोजन होता है। उर्स के आयोजन हेतु हिन्दू तारीख को अपनाना इस बात का जिन्दा सबूत है कि यह साम्प्रदायिक सद्भावना एवं सिलसिले का प्रवहमान दरिया है। हजारों श्रद्धालु एवं शिष्य यहां बाबा का आशीर्वाद पाने की आकांक्षा के साथ प्रतिवर्ष अपनी हाजिरी दर्ज करते हैं। इस खानकाह को अपना प्रकाशन संस्थान भी है जो उर्दू, अरबी, फारसी एवं हिन्दी भाषा में दस्तावेज एवं आलेखों का प्रकाशन करता है।

17वीं शताब्दी में एक अन्य महत्वपूर्ण सूफी संत मखदूम सैयद हसन चिश्ती अरब से हिन्दुस्तान आये और सिवान शहर से 21 कि.मी. दक्षिण धनर्ई नदी के किनारे एकांत में बस गये। यहां इन्होंने एक खानकाह एवं एक आकर्षक मस्जिद की स्थापना की। देखते-देखते यह जगह आबाद हो गई और उनकी मृत्यु के बाद इस जगह को संत के नाम पर हसनपुरा के नाम से लोकप्रियता प्राप्त हुई। अपने प्रिय संत की याद में इनके उत्तराधिकारी एवं श्रद्धालुओं ने एक आकर्षक मजार बनवाया जो आज भी हिन्दु और मुसलमान दोनों ही समुदाय की बीच समान रूप से लोकप्रिय है।



सैयद हसन चिश्ती के मजार पर जन आस्था

## सारण



## ठपरा

हजरत हुसामुद्दीन मानिकपुरी के वंशजों में एक बुजुर्ग संत हजरत शाह करीमुद्दीन चिश्ती भी बिहार आये और छपरा में कुछ दिनों के लिए बस गये। छपरा शहर का करीमचक मुहल्ला आज भी उनकी याद से जुड़ा है। चिश्ती सिलसिले के इस बुजुर्ग सूफी द्वारा स्थापित खानकाह आज भी आबाद है। एक लम्बे समय तक उनके वंशज आध्यात्मिक ज्ञान एवं सामाजिक सौहार्द के प्रचार-प्रसार में लगे रहे। इस खानकाह के परवर्ती सूफी संत हकीम शाह फरहतुल्लाह, शाह मजहर हुसैन, शाह मेहदी हसन इत्यादि



बिहार में सूफी आंदोलन / 60

सिलसिला-ए-मुनएमिया में दीक्षित हुए। यहां की दरगाह आज भी सभी सम्प्रदायों एवं वर्गों के लोगों के बीच समान रूप श्रद्धा एवं आस्था का केन्द्र है और उस का अवसर मानो पूरे समाज के लिए पर्व-सा होता है जहां यह खोज पाना मुश्किल होता है कि मेले में शामिल कौन-सा व्यक्ति हिन्दू है और कौन मुसलमान, कौन दलित है और कौन पण्डित। इसी प्रकार सारण जिले के रतन सराय में शतारिया सिलसिले के हाजी हमीद की दरगाह भी विख्यात रही है। हाजी हमीद मूलतः काजिन उला-शतारी जो शतारिया सिलसिले के सबसे प्रतिष्ठित एवं संस्थापक संत माने जाते हैं, के ही एक प्रतिष्ठित खलीफा थे।

सारण में एक अन्य सूफी संत सैयद जैनुल आबेदीन की खानकाह भी सम्मानजनक स्थान रखती थी। आप ईसा ताज जौनपुरी के एक मशहूर खलीफा थे और जाहिद बढ़ चिश्ती के नाम से सुप्रसिद्ध हुए थे। आपके ही दामाद शाह फैजुल्लाह थे जो काजिन उला शतारी के नाम से विख्यात हुए। आज की तारीख में सिर्फ मजार का अवशेष है और खानकाह अपना अस्तित्व खो चुकी है मजार की लोकप्रियता भी अतीत के समान गुलजार नहीं है।

छपरा रेलवे स्टेशन की ओर जानेवाले व्यस्तम सड़क के किनारे एक अत्यन्त ही सुन्दर शिल्प व रंग-रोगन से सुसज्जित मजार अवस्थित हैं। यह मजार सूफी संत सैयद शेर अली शाह का है। संभवतः हजरत सैयद शेर अली मखदुम यहिया मनेरी की ही संतति थे। आप 15वीं सदी में यहां आकर बस गये और अपनी खानकाह की स्थापना की। उन्होंने न सिर्फ आध्यात्मिक ज्ञान की शिक्षा दी बल्कि जीवन को सही दिशा में ले चलने व जीने के लिए प्रेरित किया। हजरत शेर अली द्वारा स्थापित यह खानकाह लम्बे समय तक जरूरतमंद लोगों के कल्यानार्थ चिकित्सा की भी सुविधा प्रदान करती रही। इस आध्यात्मिक केन्द्र के द्वारा गरीबों को अपनी बेटियों के विवाह करने में भी मदद प्रदान की जाती रही। मजार समिति द्वारा इस सिलसिले को आज भी

जारी रखा गया है।

स्थानीय स्तर पर यह कुंवारे पीर बाबा का मजार के नाम से लोकप्रिय है। आठवें इस्लामिक माह के 14वें दिन, शबनम को यहां भव्य वार्षिक उर्स का आयोजन किया जाता है। आज की तारीख में खानकाह का अस्तित्व यहां भले ही न हो किन्तु मजार की लोकप्रियता मजहब, उप्र व जाति की सीमा से परे है। यहां श्रद्धालुओं की

उपस्थिति न सिर्फ छपरा सहित पूरे बिहार प्रांत से बल्कि सम्पूर्ण उत्तर भारत से दर्ज होती है। इस मजार पर ऐसे वयस्क श्रद्धालु भी देखे जा सकते हैं जो बच्चों की तरह रोते हुए अपने अभिभावक व प्रिय पीर बाबा से मार्गदर्शन व आशीर्वाद हेतु विनती कर रहे होते हैं। यह मजार छपरा रेलवे स्टेशन से बमुश्किल एक कि.मी. की दूरी पर अवस्थित है।



दरगाह परिसर में मौजूद मन्त्र वृक्ष

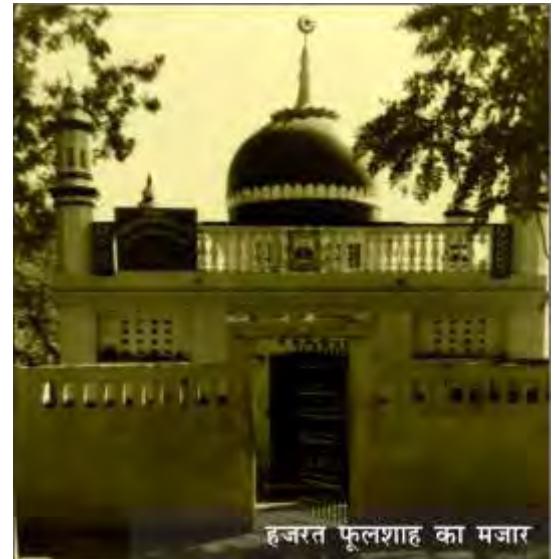


## गोपालगंज



गोपालगंज के हथुआ-महल से मात्र 1.5 किलोमीटर पूर्व में अवस्थित मधुवाला में हजरत फूल मुहम्मद का दरगाह आज भी हिन्दू-मुस्लिम सम्प्रदाय के बीच समान रूप से लोकप्रिय है। कहते हैं कि हजरत फूल शाह मध्य-प्रदेश के इंदौर से भटकते व विचरण करते हुए गोपालगंज पहुंचे थे। उनके गोपालगंज पहुंचने के पीछे भी एक कहानी प्रचलित है। कहते हैं कि हथुआ राज की महारानी एक ऐसे व्यक्ति की तलाश में थी जो उनके ईंट भट्ठों की रक्षा कर सके। किन्हीं कारणों ईंट सूख नहीं रही थी और उसके बगैर न तो इसे पकाया जा सकता था और न ही निर्माण कार्य ही किया जा सकता था। बारा परगना के जागीरदार इस्माइल अली खाँ आगे आये और हजरत फूल मुहम्मद नामक एक मस्तान के साथ हथुआ महल पहुंचे। हजरत ने उन दुष्ट तत्वों को खोज निकाला जो ईंट-भट्ठों के विनाश का कारण बने हुए थे। उन्होंने अपने करिशमाई कर्मकाण्डों से दुष्टात्माओं का खात्मा किया। महाराजा बहुत प्रसन्न हुए और महारानी तो बजाप्ता शिष्य बन गई। दरअसल हजरत को कहीं और जाना था किन्तु उन्होंने उसी महल से 1.5 कि.मी. पूरब माधिया, माधवाल में रहने व बसने का फैसला किया।

मध्य जिसे हिन्दी-संस्कृत परम्परा में मधु कहा जाता है हजरत का सबसे पसन्दीदा खाद्य पदार्थ था। इसलिये इस स्थान को मधुवाला कहा गया। हजरत फूल मुहम्मद शाह की मृत्यु के बाद हथुआ महाराज ने वहाँ उसके कब्र पर मकबरा बनवाया। हरे व सफेद रंग की यह साधारण-सी दरगाह हिन्दू और मुस्लिम, दोनों समुदायों की सक्रिय भागीदारी एवं आस्था का केन्द्र है। श्रद्धालु यहाँ मुद्रा दान करते हैं और चादर चढ़ाते हैं। इनमें से कुछ पवित्र कुरान की आयतें भी पढ़ते हैं। कहते हैं कि इस मकबरे के अन्दर मोहम्मद शाह की भी कब्र मौजूद है। मकबरे के करीब एक मस्जिद भी मौजूद है। सफेद व गुलाबी रंग की इस मस्जिद में तीन गुम्बद एवं दो मीनारें हैं। एक करबला और एक विशाल तालाब भी मौजूद हैं।



हजरत फूलशाह का मजार

## औरंगाबाद



### अमङ्गर शरीफ

अमङ्गर शरीफ में बिहार के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सूफी संत का मजार है और बिहार सरकार के पर्यटन विभाग द्वारा विकसित किये जा रहे सूफी सर्किल का हिस्सा भी है। यह मजार सैयद अमीर मोहम्मद कादरी रज्जाकी की है। वे बगदाद के रहनेवाले थे और 15वीं शताब्दी में यहां आकर बस गये थे। आप कादरी सिलसिला के प्रथम महत्वपूर्ण सूफी संत थे जिन्होंने इस सिलसिले की खानकाह बिहार में स्थापित की। आपने 100 वर्षों से अधिक की जिन्दगी को जिया और बड़ी संख्या में अपने श्रद्धालुओं एवं अनुयायियों की जमात खड़ी की। आज की तारीख में इस दरगाह के परिसर में 40 से भी अधिक उनके शिष्यों का मजार मौजूद है जो प्रमाणित करता है कि उनके आध्यात्मिक अभियान की लामबन्दी कितनी विस्तृत एवं मजबूत रही होगी। सैयद अनीस अहमद कादरी दाउदनगरी अपनी किताब 'हैयात सैयदना' में कहते हैं कि हजरत सैयदना जब अमङ्गर में ठहरे तो एक अजदहा (सांप) और कई पशु-पक्षी भी उनके शिष्य बन गये। यद्यपि इस दरगाह का पुनर्निर्माण एवं पुनरुद्धार पिछले वर्षों में कई दफा किया गया किन्तु मजार का ऐतिहासिक प्राचीन ढांचा जो यद्यपि काफी छोटा है, तथापि वह सुरक्षित एवं सम्बद्ध है।

अमङ्गर शरीफ औरंगाबाद जिले के हसपुरा प्रखण्ड में अवस्थित है। यह दाउद नगर-गया रोड के पंचरुखी मोड़ से 8 कि.मी. उत्तर में पड़ता है। इस दरगाह के परिसर की एक विशेष बात यह है कि यहां एक पेड़ पाया जाता है जो अमङ्गर शरीफ को छोड़कर अन्य किसी जगह पनप नहीं पाता। दरगाह से



अमीर मोहम्मद कादरी रज्जाकी का मजार एवं कब्र, अमङ्गरशरीफ

सम्बद्ध व्यक्तियों एवं सन्तों के अनुसार बुजुर्ग संत सैयद अमीर मोहम्मद कादरी रज्जाकी बगदाद से ही इस पेड़ की डाढ़ लेकर चले थे और यह तय किया था कि यह डाढ़ जहां ‘हरी होगी’ अर्थात् लगेगी, वहीं उनका बसेरा होगा । यह डाढ़ अमझर शरीफ में ही हरी हुई अर्थात् लगी अन्य कहीं नहीं। इसलिये उन्होंने अमझर शरीफ में बसेरा व खानकाह बनाना कबूल किया। दरगाह से सम्बद्ध व्यक्तियों के अनुसार आज यह पेड़ या तो बगदाद में या फिर अमझर शरीफ में ही मिलता है, अन्य कहीं नहीं।

उस के अवसर पर यहां लोकप्रिय मेला एवं महोत्सव का आयोजन प्रति वर्ष होता है, जिसमें श्रद्धालुओं के रूप में न सिर्फ मुस्लिम समुदाय बल्कि बड़े पैमाने पर हिन्दू लोग भी सपरिवार शामिल होते हैं। यह मेला व महोत्सव इतना शानदार व भव्य होता है कि यह अमझर शरीफ की स्थानीयता के दायरों को पार कर जाता है और बाहर के लोगों की भी अच्छी भागीदारी होती है। आज भी यह केन्द्र हिन्दू एवं मुस्लिम समुदाय के सह-अस्तित्व एवं सहानुभूति की ऐतिहासिक परम्परा के रूप में जीवित है।

हजरत सैयदना मुहम्मद कादरी रज्जाकी बगदाद के प्रतिष्ठित शेख अब्दुल्ला कादिर जीलानी परिवार के वंशज थे। वे 15वीं सदी में बिहार के



उस मेले में जन उत्साह, अमझरशरीफ

अमझर शरीफ में आकर बसे थे। 130 वर्षों की जीवन यात्रा पूरी करने के बाद 1533 ई0 में जुम्मे के दिन आपको जन्त नसीब हुई । आपकी वसीयतनामानुसार आज भी अमझरशरीफ की दरगाह सभी की श्रद्धा का महत्वपूर्ण केन्द्र है । आपके तीन पुत्र हुए - (1) सैयद मुइनुद्दीन, (2) सैयद जलालुद्दीन अबदाल एवं (3) सैयद निजामुद्दीन । आपके तीनों सुपुत्र अपने पिता के मुरीद एवं खलीफा थे तथा अपने समय के पारंगत सूफी संतों में गिने जाते थे । हजरत के दूसरे बेटे सैयद जलालुद्दीन अबदाल कादरी के वंशज औरंगजेब के समय दाऊद नगर में आकर बस गये और एक लोकप्रिय खानकाह की नींव डाली। दाऊद नगर से लगभग 8 किलोमीटर उत्तर हसपुरा में उनके ही वंशज ने एक अन्य उल्लेखनीय खानकाह को स्थापित किया। सैयद अमीर मुहम्मद कादरी के पोते ने मरउरा शरीफ में एक लोकप्रिय खानकाह की नींव डाली। आज की तारीख में इस खानकाह के परिसर में एक मस्जिद, मदरसा एवं मजार का अस्तित्व मौजूद है जिन्हें स्थानीय जागीदार मिर्जा दनियाल ने बनवाया था। ये सभी केन्द्र सामुदायिक सौहार्द एवं भागीदारी के अद्भुत नमूने हैं।



उस मेले में जनभागीदारी, अमझरशरीफ

## दाऊद नगर

दाऊद नगर शहर पटना से लगभग 100 कि.मी. पश्चिम, पटना-औरंगाबाद रोड (राष्ट्रीय राज्य मार्ग-98) पर अवस्थित है। इस शहर के पश्चिमी किनारे से सोन नदी उत्तर-दक्षिण दिशा में बहती है। नदी और सड़क मार्ग से जुड़े रहने के कारण इस शहर के इतिहास में राजनैतिक और व्यापारिक महत्व रहा है। इस शहर की स्थापना 1660-64 के बीच मुगल बादशाह औरंगजेब के बिहार-सूबेदार दाऊद खाँ कुरैशी ने की थी। उसने सुरक्षा एवं व्यापारिक दृष्टि से पूरे शहर की मजबूत किलेबन्दी करवाई तथा राजस्व संग्रह, शस्त्रागार, अस्तबल, निवास स्थान आदि के लिये महत्वपूर्ण स्थापत्य का निर्माण करवाया। शहर की चारों दिशाओं (पूरब, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण) में प्रवेश द्वारा बनाये गये। किन्तु आज ऐतिहासिक निर्माण का अधिकांश नष्ट



हो चुका है और द्वारों में सिर्फ 'छतर दरवाजा' को ही उसके अवशेष रूप में देखा जा सकता है।

अमझर शरीफ की खानकाह के संस्थापक हजरत सैयदना मुहम्मद कादरी के दूसरे बेटे सैयद जलालुद्दीन अबदाल मुहम्मद कादरी के वंशज दाऊद नगर में आकर बस गये थे। सैयद शाह हसनुल्लाह कादरी ने दाऊद नगर किला से कुछ दूर पश्चिम में एक लोकप्रिय खानकाह की नींव डाली। दाऊद नगर के तत्कालीन नवाब (दाऊद खाँ कुरैशी) के परपोते तथा मुगल सूबेदार नवाब अहमद अली खाँ से उनकी निकटता काफी थी, फिर भी उन्होंने शाही सहायता लेने से परहेज किया। दाऊद नगर के पुराना शहर के मियां टोली में यह खानकाह आज भी भलीभांति आबाद है। इस खानकाह में सैयद शाह हसनुल्लाह कादरी का  $50 \times 40$  फुट का मजार मौजूद है। यद्यपि यहां का पुराना मूल ढांचा आज की तारीख में भूर्भू तल में चला गया है, क्योंकि पिछले दशकों में स्थानीय श्रद्धालुओं के द्वारा कई बार इस मजार का पुनर्निर्माण किया गया। स्थानीय स्तर पर इस खानकाह के हजारों श्रद्धालु हैं और सामुदायिक सहभागिता से यहां का प्रबन्धन, उर्स या अन्य कार्य किये जाते रहे हैं।

इस शहर में एक अन्य मजार काफी लोकप्रिय है, जिसे लोकप्रिय जनभाषा में 'नवाब साहब का मजार' कहा जाता है। किन्तु वास्तव में यह किसी नवाब का नहीं बल्कि सूफी संत अब्दुल रशिद अहमद कादरी का मजार है। दाऊद नगर के नवाब, अहमद अली खाँ, जो मुगल बादशाह मुहम्मद शाह के सूबेदार थे, वहां से दूर पटना सिटी के मुगलपुरा मुहल्ले में आराम से रहते थे और उनकी जागीर की देख-भाल सूफी संत अब्दुल रसीद अहमद कादरी को करनी पड़ती थी। कालान्तर में स्थानीय लोगों के बीच वे 'नवाब साहब' के नाम से जाना जाने लगे। हजरत अब्दुल रसीद कादरी तत्कालीन नवाब अहमद खाँ कुरैशी के आध्यात्मिक गुरु व मार्गदर्शक भी थे और इसलिए उनके

सम्मान में एक नई बस्ती अहमदगंज के नाम से पुराना शहर के निकट आबाद की गई। यहाँ मौलाबाग में मौजूद इनका मजार लोकप्रियता की मिसाल है। दरसअल नवाब अहमद अली खाँ और उनकी बेगम का मकबरा कुछ दूरी पर है जिसे स्थानीय स्तर पर 'मियाँ-बीबी का मजार' के रूप में जाना जाता है।

सूफी संत अब्दुल रसीद अहमद कादरी का मजार 20×25 वर्ग फुट का एक साधारण एवं छोटा ढांचा है। यहाँ सतह के खुले हिस्से में कुछ अन्य कब्रगाह भी हैं, किन्तु यह सुनिश्चित करना संभव नहीं है कि ये कब्रगाहें सूफी संत अहमद कादरी के किन शिष्यों की हैं। यहाँ सभी समुदायों के स्थानीय लोगों के द्वारा संत के उर्स के अवसर पर उत्साह एवं उमंग के साथ परम्परागत रूप से भागीदारी निभाई जाती रही है।

दाऊद नगर शहर में एक अन्य सूफी संत घोड़े शाह का मजार भी अत्यंत लोकप्रिय है। किन्तु घोड़े शाह के बारे में विस्तृत जानकारी, जैसे - कहाँ से आये थे, किस सूफी सिलसिले से सम्बद्ध थे आदि, उपलब्ध नहीं है। हाँ, इतना तय है कि घोड़े शाह का नाम हजरत इस्माईल शाह था। उनका मजार दाऊद नगर के थाना परिसर में मौजूद है और वे आज भी यहाँ के लोगों के दिलोजान में बसते हैं। कहते हैं कि गुलाम भारत में जब थानेदार, दारोगा,



बिहार में सूफी आंदोलन / 66

सिपाही आदि इस क्षेत्र का दौरा करने आते थे तो उन्हें घोड़ा दिया जाता था। इन घोड़ों की हिफाजत के लिए यहाँ घोड़े शाह साईंस के पद पर नाफीज थे। साईंस के बाद जो समय बचता उसका इस्तेमाल वे इबादत-रेयादत में करते थे। इनकी मृत्यु के बाद यहाँ थाना परिसर में उनकी याद में एक मजार बनाया गया। एक बार इसी थाने में दारोगा अब्दुल अजीज पदास्थापित हुए। कहते हैं कि एक दफा वे प्रशासनिक कार्य से जरूरी कागजात लेकर कहाँ जा रहे थे। उनके कागजात कहाँ खो गये। किसी ने सलाह दी कि वे इस मजार पर फातेहा कर अपनी मुराद रखें। उन्होंने वैसा ही किया। शाम के वक्त किसी अजनबी शख्स ने आकर खोये हुए कागजात वापस कर दिये। खुश होकर अब्दुल अजीज ने चादरपोशी की और कब्वाली का आयोजन किया। यह दस रुज्जब को हुआ इसलिए हर साल इसी तारीख को प्रशासन के द्वारा यहाँ चादरपोशी एवं कब्वाली का आयोजन किया जाता है जिसमें व्यापक जन भागीदारी होती है।



## मनौरा शरीफ (ओबरा)

दाउद नगर शहर से कुछ कि.मी. दूरी पर मनौरा शरीफ (ओबरा) में अन्य सूफी संत सैयद शाह सुलेमां अहमद कादरी का मजार भी अत्यंत लोकप्रिय है। आप हजरत सैयदना अमझरी के पोते तथा हजरत सैयद शाह जलालुद्दीन के छोटे पुत्र थे। आपने अपने दादा से शिक्षा ग्रहण की और उनके मुरीद एवं खलिफा बने। पिता के आदेश से आपने परगना मनौरा (ओबरा) में अपनी खानकाह की नींव डाली। परगना मनौरा के जागीरदार मिर्जा दानियाल आपसे काफी प्रभावित हुए और उन्होंने अपने किले के निकट ही हजरत की खानकाह, मस्जिद एवं मदरसा बनवाया।

कहते हैं कि एक बार उनकी खानकाह के निकट एक बारात आकर ठहरी। जब रात ज्यादा गुजरी तो हजरत इबादत के लिए तैयार हुये और अपने लोगों को कहा कि जाकर बारात वालों को मना कर दो कि अब ढोल बाजा आदि न बजायें, हल्ला न करें, हजरत को इबादत करनी है। किन्तु बाराता वालों ने हजरत की बात नहीं मानी। कहते हैं हजरत ने सभी बारातवालों को मूरत बना



उस के अवसर पर चादरपोशी



मजार पर अकीकतमंदो का हुजूम

डाला। सुबह होते ही जब आबादी सो कर उठी तो उन्होंने देखा कि पूरी बारात पत्थर की मूर्ति में तब्दील हो चुकी है। यह बात पूरे इलाके में जंगल की आग की तरह फैल गई और देखनेवालों का हुजूम टूट पड़ा। आज भी हजरत की दरगाह पर जायरीनों की उपस्थिति रोजाना होती है और लोग अपने भले की दुआ मांगते देखे जा सकते हैं। मन्त्र मांगनेवाले लोगों में सभी सम्प्रदायों व वर्गों के लोग होते हैं।



## गया



## गया

गया भारत के प्राचीनतम शहरों में से एक है। यह शहर जहाँ एक ओर बुद्ध से जुड़े स्मृति-चिन्हों, बौद्ध-विहारों, स्तूपों, मठों आदि के लिये प्रसिद्ध रहा है वहाँ हिन्दू धर्म के रिवाजों, कर्मकाण्डों एवं मन्दिरों के लिये भी। मध्यकाल में इस क्षेत्र की महत्ता सूफी आन्दोलन के प्रवाह तथा इस्लामिक संस्कृति की मौजूदगी से बनी रही। आज भी यहाँ दर्जन-भर ऐतिहासिक मस्जिदों का अस्तित्व मौजूद है। इनमें से नादिरांज में जहांगीर के कार्यकाल में बनी मस्जिद सबसे महत्वपूर्ण है। यह मस्जिद 1615-16 ई. में बनी और लगभग यही कार्यकाल मनेर की छोटी दरगाह का भी है।

गया की भूमि सूफी सिलसिलों के लिए भी उर्वरक सिद्ध हुई। हजरत सैयद शाह अताहुसैन 'फानी' ने 1848 ई. में चिश्ती मुनमिया अबुउलाइया सिलसिले की एक अति लोकप्रिय खानकाह की स्थापना की। आप ईरान के सूफी संत ख्वाजा ताजीउद्दीन के वंशज थे। ताजीउद्दीन लाहौर होते हुए अजमेर आये और बहुत दिनों तक गरीब नवाज के सानिध्य में रहे। अन्ततः उन्होंने दिल्ली को अपना स्थायी निवास बनाया और ताजीउद्दीन 'देहलवी' के नाम से लोकप्रिय हुए।

शाह अताहुसैन 'फानी' बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न थे। आप एक लोकप्रिय सूफी संत होने के साथ-साथ नामचीन कवि तथा कई पुस्तकों के लेखक भी थे। कैफीयतुल, आरेफीन, कन्जुलअन्साब और दीदेमगारिब इनकी चर्चित पुस्तकें हैं। भारत के अलावा अरब व ईरान में भी आपके मुरीद मौजूद हैं। इनका मजार खानकाह के अन्दर है। खानकाह से सम्बद्ध एक 3 फुट × 3.5 फुट का कमरा है जिसे वे अकांत में बैठकर स्मरण करने हेतु उपयोग में लाते थे इसे



खानकाह चिश्तिया - मुनएमिया- अबुलअताइया

‘जिन्ति मामून की कोठी’ कहा जाता है। 1893 ई. में शाह अताहुसैन ‘फानी’ की इसी खानकाह में मृत्यु हो गई।

इस प्रतिष्ठित खानकाह में लोग न सिर्फ धार्मिक व आध्यात्मिक श्रद्धा से प्रेरित होकर आते हैं बल्कि कुछ लोग शोध-कार्य के उद्देश्य से भी आते हैं। यहां लगभग 450 दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ मौजूद हैं जिनमें हज पर उर्दू में पहला सफरनामा, उर्दू में ‘दीवान-ए-फानी’ तथा कुछ अरबी एवं फारसी की पाण्डुलिपियाँ हैं। यहां लोग स्वर्ण रेखाचित्र से सुसज्जित ‘आयेत-उल-कुर्सी’ रचना को देख सकते हैं जिसमें लगभग सम्पूर्ण कुरान पुस्तक में किनारी की कसीदाकारी के रूप में अंकित है। यह खानकाह अपनी दुर्लभ पाण्डुलिपियों एवं किताबों को खुद प्रतिरक्षित करती है जिनमें हदीस की दुर्लभ प्रति गंजीना-ए-ऑलिया, अफसाना-ए-दिलपजीर, मसनवी सिरे अता, अल-कमाल, कंजुल अंसाब आदि महत्वपूर्ण हैं। यह खानकाह ‘दारूल उलूम अतैया’ नामक मदरसे का संचालन आज की तारीख तक सफलतापूर्वक कर रही है। इसके अतिरिक्त यह खानकाह मगध विश्वविद्यालय से सम्बद्ध होकर व्यावसायिक पाठक्रम भी चला रही है, जो ए.आई.एम.टी. के नाम से जाना जाता है, जिसमें बी.सी.ए. और बी.बी.एम. कोर्स भी शामिल हैं। खानकाह से सम्बद्ध एक दर्शनीय मस्जिद भी है, जो 1915 की बनी हुई है।



शाह अताहुसैन ‘फानी’ का कक्ष

इस खानकाह के उर्स का कार्यक्रम प्रतिवर्ष बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है और इस अवसर पर मुहम्मद साहब के भालू का बाल, ख्वाजा गरीब नवाज का गौन, ख्वाजा ताजुउद्दीन की पोशाक आदि की प्रदर्शनी

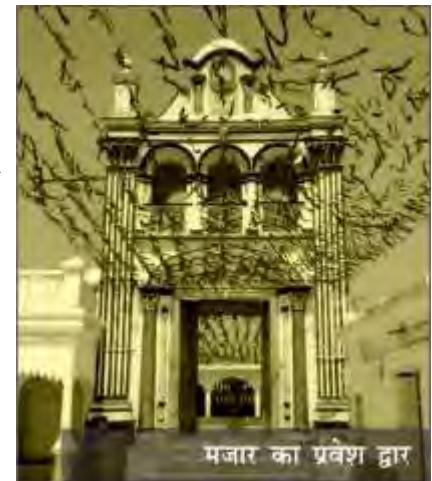
भी श्रद्धालुओं के लिए लगाई जाती है।

गया में खानकाह मजाहिरिया मुनएमिया आबगीला, खानकाह मुनएमिया रामसागर, गया की एक जानी-पहचानी शाखा है और आज भी आबाद है। गया के मानपुर में खानकाह-ए-कादरिया की एक अन्य महत्वपूर्ण शाखा है। यहां की खानकाहें आज भी न सिर्फ आबाद हैं बल्कि काफी लोकप्रिय भी हैं। प्रति वर्ष यहाँ उर्स के अवसर पर श्रद्धालुओं की भारी भीड़ इकट्ठा होती है, जिसमें सभी वर्ग एवं सम्प्रदाय के लोग रहते हैं।

### बीथो शरीफ

गया शहर से 5 कि.मी. उत्तर बीथो शरीफ में 15वीं सदी के पूर्वार्द्ध में एक ऐतिहासिक खानकाह की स्थापना हजरत मखदूम दुर्वेश अशरफ चिश्ती द्वारा की गई। आप एक खानदानी सैयद होने के साथ-साथ कई पुश्त पूर्व हजरत अब्दुल कादिर जिलानी, हजरत अशरफ जहांगीर समदानी, अब्दुर्रज्जाक नुरुलएन आदि जैसे कालजयी सूफी संतों के रक्त-सम्बन्धी थे। हजरत दुर्वेश अशरफ के पिता मखदूम गुलाम मुबारक अशरफ अपने समय के वली-ए-कामिल और अशरफिया सिलसिले के मशहूर बुजुर्ग थे। जहानाबाद के पिंजोरा शरीफ में आपकी सुविख्यात खानकाह थी। मखदूम दुर्वेश अशरफ ने अपने पिता से ही धार्मिक शिक्षा ग्रहण की, मुरीद हुए और खिलाफत प्राप्त की।

मखदूम दुर्वेश अशरफ





मखदूम दुर्वेश अशरफ का मजार

आध्यात्मिक ज्ञान के प्रसार के लिए पिंजोरा शरीफ से निकल पड़े और बीथो शरीफ में अपना स्थाई पड़ाव डाला। उस समय वहाँ कोल्हा और सेवतार नामक अनुसूचित जाति के लोग आबाद थे, जिनमें शिक्षा व सभ्यता का बेहद अभाव था और वे जंगली जीवन व्यतीत कर रहे थे। आपने कठिन व प्रतिकूल वस्तुगत स्थिति के बीच अपना मिशन शुरू किया, किन्तु देखते-देखते स्थितियाँ बदलीं। आपके अनुयायियों की संख्या बढ़ती गई। उस क्षेत्र के कई उलमा और प्रतिष्ठित व्यक्ति भी आपके मुरीद होने लगे। यहाँ तक कि

इब्राहिमपुर नौडिहा के नाजिम भी आपके मुरीद हो गये। उस समय के हाकिम ने खानकाह का प्रबन्ध चलाने के लिये बीथो गांव के जागीर का फरमान जारी किया। आगे चलकर गुलाम शासक शाह आलम ने भी बिहार शरीफ में एक हजार एक सौ बीघा जमीन खानकाह को आवंटित की, जिसके फरमान की कॉपी आज भी सचिवालय में मौजूद है। देखते-देखते बीथो शरीफ की प्रसिद्धि राज्य (सूबे) की सीमा को पार कर गई।

एक मुद्रित तक मानवता की सेवा करने के बाद हजरत मखदूम दुर्वेश अशरफ की 1497 ई0 में मृत्यु हो गई। बीथो शरीफ में ही फलगू नदी के किनारे उनको दफन कर मजार बनाया गया। आगे चलकर उनके श्रद्धालुओं ने मजार पर भव्य इमारत बनवाई। आज की तारीख में बीथोशरीफ अपनी सुन्दर दरगाह, आलीशान खानकाह और भव्य मस्जिद के साथ मौजूद है। यहाँ प्रति दिन अकीकतमंदों की एक अच्छी शिरकत देखी जा सकती है। यहाँ शबे बारात महीने की 11, 12, 13वीं तारीख को उर्स के कार्यक्रम का आयोजन होता है, जिसमें देश के कोने-कोन से लाखों की संख्या में श्रद्धालु आते हैं और अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हैं। यह खानकाह मखदूम दुर्वेश अशरफ चिश्तिया अशरफिया सिलसिले का हिस्सा है।



खानकाह चिश्तिया-अशरफिया, बीथोशरीफ

## जहानाबाद



### काको

बिहार में सूफी संतों की श्रृंखला में कुछ महिला सूफी संतों के नाम भी दर्ज हैं, जिनमें बीबी कमाल का नाम अग्रणी है। आप शायद बिहार की प्रथम महिला सूफी संत थीं। बीबी कमाल सुप्रसिद्ध सूफी संत पीर जगजोत की बेटी थीं। पीर जगजोत के पिता सुलतान मुहम्मद ताज काशगर के शासक थे। पीर जगजोत शाही ठाट-बाट को छोड़ कर सूफी संत हो गये और अपनी पत्नी तथा चार बेटियों के साथ पटना से 20 कि.मी. पूरब जेठुली नामक बस्ती में बस गये। पीर जगजोत की बड़ी बेटी बीबी रजिया की शादी अपने समय के सुप्रसिद्ध सूफी संत हजरत मखदूम यहया मनेरी से हुई और उनकी छोटी (तीसरी) बेटी बीबी कमाल की शादी काको के सूफी संत हजरत सुलैमान लंगर से। इस प्रकार मखदूम यहिया मनेरी और हजरत सुलैमान लंगर दोनों आपस में साढ़ी थीं।

कहते हैं कि बीबी कमाल का काको में पदार्पण पालकी से हुआ था। इस पालकी के साथ चार मुस्लिम कहार, एक उस्ताद (मो. फरीद), एक खादिमा (बेगु), एक नौकर (फहीम) आदि भी थे। इन खादिमों और खादिमाओं के मजार भी बीबी कमाल के मजार के पास ही हैं। दाईं बेगु का मजार परिसर के अन्दर आपके पैताने में दीवार से सम्बद्ध है।

मध्यकाल में दिल्ली का बादशाह फिरोज शाह तुगलक बिहार शरीफ जाते हुए काको से गुजरा था। बादशाह को सूचना मिली कि मखदूमजहाँ शरफुद्दीन यहया मनेरी की खाला (मौसी) यही लेटी हुई है तो बादशाह ने श्रद्धावश वहाँ रुकने (पड़ाव देने) का निर्णय किया। बादशाह के आदेश पर बिहार के तत्कालीन गवर्नर (सूबेदार) ने 1359 ई. में इस खानकाह के सभी मजार का पक्कीकरण एवं पुनर्निर्माण करवाया। इसके परिसर में एक शानदार ईदगाह भी बनाई गई।

13वीं सदी के पूर्वार्द्ध में बीबी कमाल के पति की मृत्यु के बाद उन्होंने जहानाबाद के काको बस्ती में ईश-ज्ञान के प्रसार का दायित्व भली-भांति निभाया। कहते हैं कि उन्होंने मानवता के जज्बा से प्रेरित होकर स्थानीय जमींदार के शोषण एवं क्रूरता से





बीबी कमाल का दरगाह परिसर, काको

आमजनों को राहत दिलाई। लेकिन इसके बावजूद एक नकारात्मक कहावत भी यहां प्रचलित है—“काको जल गया और बीबी कमालू सोयी रहीं।” दरअसल इस वाक्य को पहली बार मखदूम यहया मनेरी ने कहा था जो बाद में कहावत या मुहावरे के रूप में प्रचलित हो गया। हो सकता है कि उन्होंने अपनी छोटी साली को मजाक के रूप में कहा हो अन्यथा शताब्दियां गुजर जाने के बावजूद उनकी खानकाह एवं मजार हजारों-हजार लोगों, जिनमें हिन्दू व मुस्लिम समान रूप से शामिल हैं, की आस्था का केन्द्र बना नहीं रह सकता था।

### कुछ अन्य

जहानाबाद के अमथुआ शरीफ में भी एक लोकप्रिय खानकाह स्थानीय लोगों के बीच अध्यात्म एवं मानव कल्याण की रोशनी प्रदान करती रही। इस खानकाह के सिलसिले में शाह अहमद हुसैन, जहूरूल हसन अमथुवी और शाह खलीलुल्लाह जैसे प्रसिद्ध और विद्वान सूफियों के नाम दर्ज हैं। एक समय यहां मौजूद मदरसा अरबी-फारसी की शिक्षा व ज्ञान का एक सुप्रसिद्ध केन्द्र

था, किन्तु अब यह सब इतिहास मात्र बनकर रह गया है। अमथुआ में ही मौलाना फजलुर्रहमान गंजमुरादाबादी के सिलसिले की भी एक खानकाह की नींव पड़ी थी जो अभी तक आबाद है।

पुराना जहानाबाद जिला के पिंजोरा (अब अरवल जिला) में एक उल्लेखनीय सूफी सैयद उमर खुरासानी की विख्यात दरगाह है। मौलाना सैयद वलायत हुसैन मुनएमी, मौलाना सैयद जहूरउद्दीन मुनएमी, जस्टिस नुरुल होदा आपही के वंशज थे। ज्ञातव्य है कि उमर खुरासानी के वंशज में उलेमा, सूफी एवं बुद्धिजीवियों की एक बड़ी संख्या पैदा हुई। अरवल तहसील के पिंजोरा में 14वीं शताब्दी में मखदुम गुलाम मुबारक अशरफ के द्वारा एक उल्लेखनीय खानकाह की नींव डाली गई थी। आप अशरफिया सिलसिला के एक मशहूर बुजुर्ग थे और उत्तर प्रदेश के कछौठा से यहां आये थे। आप प्रसिद्ध सूफी संत अब्दरज्जाक नुरुलएन के वंशज थे। गुलाम मुबारक अशरफ के पुत्र मकदूम दुर्वेश अशरफ ने गया के बीचों शरीफ में सुप्रसिद्ध खानकाह की नींव डाली थी।



## भोजपुर



### आरा

आरा वर्तमान भोजपुर जिला तथा पुराने शाहाबाद जिला का मुख्यालय रहा है। बुचानन के अनुसार, आरा संज्ञा संस्कृत के 'अरण्य' शब्द से हुआ है जिसका अर्थ है जंगल/बगीचा जो प्राचीन काल में इस क्षेत्र में चारों तरफ था। ऐतिहासिक स्रोत बताते हैं कि मखदुमेजहाँ शरफुद्दीन यहाया मनेरी राजगीर-बिहार शरीफ स्थानान्तरित होने के पूर्व यहां के वनों में एवं नदियों के किनारे बसे बस्तियों में वर्षों रहे, विचरण किये और आध्यात्मिक अभियान चलाया। आज भी इनके पड़ाव-स्थल, जहां वे कुछ माह रहें, आबाद है, जिसमें बड़हरा प्रखंड में ग्राम बबुरा तथा बिहिया प्रखंड के पिपरा, जगदीशपुर का नाम उल्लेखनीय होगा।

भोजपुर जिले के आरा में खानकाह फरीदिया सिलसिला अबादानिया मुजादिया की मुख्य खानकाह है। इस खानकाह की स्थापना हजरत शाह फरीदुद्दीन आरवी ने की थी। वे मूलतः उत्तर प्रदेश के जौनपुर जिले में अवस्थित रसूलाबाद के रहनेवाले थे। उनके आध्यात्मिक गुरु गाजीपुर (उत्तर प्रदेश) के हाफिज ईमामुद्दीन थे। वे मुख्य सलाहकार हाजी दीदार अली की सलाह पर 1860 ई. में आरा के लोगों को आध्यात्मिक मार्गदर्शन देने के लिये आये थे। 1905 तक वे यहाँ जीवित रहे। उनकी मृत्यु के बाद उनका मजार एवं कब्र बनाया गया। आज यह खानकाह बिहार की लोकप्रिय खानकाहों में से एक है। यहाँ का सिलसिला खानकाह तेगिया सुरकाँही (मुजफ्फरपुर), गोरहू (मुंगेर) तथा दरभंगा आदि में उपसाखाओं के रूप में छूट फैला। समाज के लिए हजरत फरीदुद्दीन की एक अन्य उपलब्धि फैज-उल-घुरबा मदरसे



हजरत शाह फरीदुद्दीन आरवी का कब्र, आरा



खानकाह अबादानिया मुजादिया, आरा

की स्थापना के रूप में भी थी। यद्यपि 1896 में इस मदरसे की स्थापना में मुख्य भूमिका उनके मुरीद अहमद राजा खाँ की थी। राजा खाँ तत्कालीन भारत के एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण सूफी एवं धार्मिक व्यक्तित्व थे। यह मदरसा आज भी 40 से 45 आलिम तथा फाजिल पढ़े छात्रों को तैयार करने में सक्रिय है। इस मदरसे से शिक्षित छात्र आज भारत के अतिरिक्त बंगलादेश, पाकिस्तान, ईरान, सऊदी अरब और यहां तक कि अमेरिका में भी मौजूद हैं। उस के अवसर पर यहां प्रतिवर्ष श्रद्धालुओं की एक बड़ी भीड़ इकट्ठी होती है। यहां मौजूद दो कब्रों पर संगमरमर की नक्काशी एवं प्रयोग का सुन्दर नमूना पेश किया गया है।

## पीरो

पीरो अनुमण्डल मुख्यालय स्थित सूफी संत हजरत बुरहानुदीन उर्फ मौला शहीद बाबा का मजार धार्मिक आस्था के साथ-साथ साम्प्रदायिक सद्भाव का अनूठा केन्द्र है, जहां मन्त्रों मांगने सभी धर्मों, जातियों व वर्गों के लोग जाते हैं। लोगों का ऐसा विश्वास है कि मौला बाबा की दरगाह पर सच्चे दिल से इबादत करने तथा मन्त्र मांगने पर मुराद पूरी होती है। मौला बाबा जाति, धर्म व वर्ग की परवाह नहीं करते और सब पर समान रूप से नजरे इनायत फरमाते हैं।

हजरत बुरहानुदीन किस सूफी सिलसिले के रहनुमा थे तथा उनकी जीवन-गाथा क्या थी, स्रोतों के अभाव में बहुत कुछ कहा जाना संभव नहीं है। कहते हैं कि कभी पीरों सूफी पीरों की महत्वपूर्ण शरण-स्थली थी। संभवतः सूफी पीरों की अत्यधिक मौजूदगी के कारण ही इस स्थली का नाम 'पीरो' पड़ा था। बहरहाल हजरत बुरहानुदीन उनमें से एक महत्वपूर्ण सूफी संत थे। उनके इन्तकाल के बाद उन्हें पीरो थाना परिसर में ही दफनाया गया था।

स्थानीय लोगों के कथनानुसार, जिस स्थान पर मौला बाबा का मजार है, वहां पहले कच्ची मिट्टी का मजार था। मजार के समीप तत्कालीन थाना

प्रभारी का आवास हुआ करता था। मजार के पास ही एक बेहद पुराना दरख्त (बृक्ष) था जिसकी शीतल छाया मजार पर पड़ती थी। एक दिन उस थाना के प्रभारी ने अपने एक अर्दली को दरख्त काट देने का आदेश दिया। किन्तु येड़ पर कुल्हाड़ी पड़ते ही छिटक कर उसके पैरों पर आ लगी और वह गम्भीर रूप से लाहूलुहान हो गया। जब यह बात थाना-प्रभारी को पता चली तो उसे अपनी गलती का एहसास हुआ। स्थानीय लोगों की सलाह पर इस भूल के प्रयश्चित के लिए थाना प्रभारी ने वहां मौला बाबा का पक्का मजार बनाने का निश्चय किया। मौला बाबा के अनुयायियों एवं श्रद्धालुओं के सहयोग से वहां आगे चलकर एक आकर्षक मजार का निर्माण हुआ। कालांतर में पीरो थाना में पदार्थापित थानेदार मो० असफाक खाँ के सहयोग से मजार को और आकर्षक बनाया गया।

आज यहां प्रतिवर्ष मौला बाबा की याद में उस का आयोजन किया जाता है। उस के मौक पर आम से लेकर से खास तक इस मजार पर मन्त्रों मांगने आते हैं और श्रद्धालुओं की भीड़ इसे एक उत्सव में तब्दील कर देती है।



## बक्सर



बक्सर रेलवे स्टेशन से मात्र 2 कि.मी. की दूरी पर है किला मैदान। इस किला मैदान में पीर दरिया शाह की सुप्रसिद्ध दरगाह आज भी आबाद है। प्रति वर्ष हजारों स्थानीय श्रद्धालु बाबा से मन्त्रों मांगने और जियारत करने आते हैं। इस दरगाह को प्रबन्ध समिति ने बहुत सजा-संवार कर रखा है तथा दरगाह को संवारने में संगमरमर के पत्थर का भरपूर उपयोग किया गया है।

दुर्भाग्यवश इस लोकप्रिय सूफी संत की जीवनी, कर्म एवं गतिविधियों की प्रमाणिक ऐतिहासिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। दरगाह के प्रबन्ध से सम्बद्ध व्यक्तियों के अनुसार, बाबा (दरिया शाह) लगभग 450 साल पहले मदीना से यहां लोगों की आध्यात्मिक सेवा करने के लिए आये थे। जन-अनुश्रुतियों के अनुसार, बाबा (दरिया शाह) गंगा नदी पर टहलते हुए उस पार उजियार अपने आध्यात्मिक मित्र एवं संत घासी शाह से मिलने जाते थे। यद्यपि घासी शाह और दरिया शाह अलग-अलग सूफी सिलसिले से सम्बद्ध थे, किन्तु इसके बावजूद दोनों में काफी स्नेह व सौहार्द था तथा दोनों अपने-अपने क्षेत्र में लोगों का मार्गदर्शन करते रहे।

दरिया शाह की लोकप्रियता न सिर्फ मुस्लिम समुदाय में बल्कि उससे कहीं अधिक हिन्दुओं के बीच थी, इसलिये स्थानीय स्तर पर वे 'बाबा' (हिन्दू साधु) के नाम से आज भी लोकप्रिय हैं।

द्वितीय इस्लामिक महीन के 15-17 को दरिया शाह के वार्षिक उर्स उत्सव में स्थानीय जनों की भारी भागीदारी होती है। इत्रदान, अगरबत्ती दान, ताम्र-स्टैंसिल आदि जो बाबा अपने समय में उपयोग में लाते थे, की प्रदर्शनी की जाती है। 'बाबा' के कल्याणकारी लक्षण से स्थानीय श्रद्धालु इतने वशीभूत व प्रभावित रहते हैं कि आज भी कई लोग स्थानीय स्तर पर मिल जायेंगे जो कहते हुए थकते नहीं कि बाबा ने रात में उन्हें चमत्कारी दर्शन दिये थे।

इसके अतिरिक्त बक्सर से लगभग 15 कि.मी. पश्चिम चौसा में काजी शम्सुद्दीन की भी खानकाह आबाद हुई थी। आप मखदूमेजहाँ शरफुद्दीन यहया मनेरी के मुरीद थे।



## रोहतास



## सासाराम

मध्यकालीन भारत में सासाराम का एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान था। यद्यपि यह स्थान महान मध्यकालीन शासक शेरशाह सूरी की जन्म-स्थली, जीवन एवं उसके ऐतिहासिक व विशिष्ट मकबरे के कारण विख्यात है, किन्तु इस बात की चर्चा बहुत कम होती रही है कि यह भूमि सूफी आनंदोलन और कई महत्वपूर्ण सूफियों की ऐतिहासिक भूमिका के लिए भी यादगार है। बिहार के सासाराम जिले में आज भी कई पुरानी खानकाहें लम्बे समय से आबाद हैं। इनमें से एक खानकाह-ए-फरीदिया है जो आज भी अपनी उल्लेखनीय लोकप्रियता बनाये रखी है और लोगों का मार्गदर्शन व सेवा कर रही है। इस खानकाह के सज्जादानशीनों को हजरत बाबा फरीद मसऊद गंजेश्कर चिश्ती के वंशज होने का सौभाग्य प्राप्त है। इसके अतिरिक्त सासाराम में असदकिया सिलसिले की भी खानकाह आज तक मानवता की सेवा करने में व्यस्त है। इस खानकाह की स्थापना पीरबीघा (एकंगरसराय) के प्रसिद्ध सूफी (चिश्ती) संत के एक मुरीद ने की थी।

बिहार में कई ऐसे महान सूफी संतों की दरगाहें मिलती हैं जो शताब्दियाँ बीत जाने के बावजूद व्यापक लोगों की श्रद्धा का केन्द्र हैं, किन्तु दुर्भाग्यवश इनमें से कुछ ऐसे भी हैं जिनके बारे में सुनिश्चित जानकारी का अभाव है। ऐसे ही एक सूफी संत सासाराम के चन्दन शहीद थे। यदि बुचानन द्वारा प्रस्तुत



चन्दन शहीद का पहाड़, सासाराम



चंदन शहीद का मजार

हवाला को सच माना जाये कि वे महमूद गजनी के भारतीय अभियान के साथ आये थे, तो यह कहना पड़ेगा कि वे बिहार के शायद पहले सूफी संत थे। इनकी हत्या सासाराम की पहाड़ियों में ताराचण्डी के पास हो गयी थी, जहाँ इनका मजार है। कहते हैं कि उनकी हत्या स्थानीय हिन्दू राजा से एक विवाद में हुई थी। दोनों के बीच जंग हुई जिसमें सैयद मीर हुसैन, जो चंदन शाह के नाम से लोकप्रिय थे, अपने 5 मुरीदों के साथ शहीद हो गये थे। एक अन्य जन अनुश्रुति के अनुसार चंदन शाह शहीद की हत्या बनारस में एक स्थानीय पंडा द्वारा एक विवाद में कर दी गई थी। उनका सर बनारस के गंगा घाट में दफनाया गया जबकि धड़ सासाराम की पहाड़ी पर। इसलिए चंदन शहीद का मजारशरीफ सासाराम में है और बनारस में भी। शबे बारात के तीसरे दिन दोनों जगहों पर एक साथ उनका उर्स मनाया जाता है। 1613 ई. में जहांगीर के

शासनकाल में यहाँ पर मस्जिद बनाई गई और उस समय चन्दन शहीद का मजार पहले से यहीं मौजूद था। किन्तु एक मुस्लिम पीर का नाम कैसे हिन्दू नाम (चन्दन) में रूपांतरित हो गया, यह इतिहास का एक रहस्य ही है। आज भी चंदन शहीद का मजार सासाराम की पहाड़ी के शिखर पर मौजूद है और स्थानीय जनों के बीच आस्था का केन्द्र है। यहाँ मुस्लिम से अधिक हिन्दू श्रद्धालुओं की भीड़ प्रतिदिन देखी जा सकती है।

शेरशाह के मकबरे के दक्षिण-पश्चिम कोने पर एक खानकाह एक मदरसे के साथ मौजूद है। इस खानकाह की स्थापना शाह कबीर दर्वेश ने की थी। इस खानकाह-सह-मदरसे का नाम इतना अधिक था कि इसे कई दफा शाही सहायता प्राप्त हुई। 1717 ई. में सम्राट फरूखसियर द्वारा प्राप्त सहायता एवं पुनरुद्धार व्यापक था। 1762 में सम्राट शाह आलम द्वारा इसे पुनः सहायता प्रदान की गई।

सासाराम के शाहजुमा मोहल्ले में एक खानकाहे कादरिया-अबदालिया एक ऐतिहासिक व लोकप्रिय खानकाह आज भी आबाद है। इस खानकाह की स्थापना हजरत मीर सैयद शाह अब्दुला अब्दाल हुसैन कादिरी ने की थी। आप मध्य एशिया के सुप्रसिद्ध हुसैनी सैयद थे। आप बगदाद से भारत आये



खानकाह-ए-कादरिया-अबदालिया



अब्दाल हुसैन कादिरी के असा, तबरूकात, लबादा आदि ।

थे। आपको सूफी आंदोलन के महानतम् सूफी संत हजरत अब्दुल कादिरी जिलानी का सानिध्य, मुरीदी व खिलाफत प्राप्त थी और उन्हीं के आदेश पर आपका भारत की पुण्य भूमि पर आगमन हुआ था। आप पीरों के पीर अब्दुल कादिरी जिलानी के लबादा तथा उनके दिये साजो समान के साथ भारत आये थे। महानतम् सूफी संत हजरत अब्दुल कादिरी जिलानी ने आपको एक असा (छड़ी) भी दी थी और कहा था कि यह छड़ी जिस जमीन पर अपने आप गड़ जायेगी, वहाँ तुम्हारा स्थायी निवास होगा। अब्दुला अब्दाल हुसैन कादिरी ने बगदाद शरीफ से एक छोटी मंडली के साथ प्रस्थान किये थे और कई स्थानों पर अपनी जरूरतों के लिए रूके, किन्तु उनकी छड़ी (असा) कहीं नहीं गड़ी। आप यात्रा करते हुए सासाराम शहर पहुंचे और अपनी जरूरतें पूरी करने के लिए रूके। आप आगे की यात्रा शुरू करने वाले थे कि आपने देखा, आपकी छड़ी जमीन में गड़ चुकी है। आपने यहाँ स्थायी तौर पर निवास का निश्चय किया। आपके अन्य सहयोगी सूफी संत पुनः बगदाद गये और आपके परिवार को सर-सामान के साथ सासाराम लेकर आये। आपने यहाँ अपने खानकाह की नींव डाली जो आज भी आबाद है।

अब्दुला अब्दाल हुसैन कादिरी बगदादी ने यहाँ रहकर वर्षों अपना आध्यात्मिक मिशन चलाया। 1097 हिजरी में आपका अपनी खानकाह में इंतकाल हो गया। 11वें रबी-उल-सानी के दिन प्रति वर्ष आपके उर्स का आयोजन बड़ी रैनक के साथ आपकी खानकाहे कादिरिया-अबदालिया के द्वारा आयोजित किया जाता है जिसमें आपकी असा (छड़ी), तबरूकात (पोशाक), लबादा आदि की प्रदर्शनी भी की जाती है।

हजरत सैयद शाह शाहजुमा, जो हजरते अब्दुल अब्दाल कादिरी बगदादी के पोते थे, इस खानकाह के एक अन्य प्रसिद्ध सूफी संत हुए जिनका मूल नाम मीर सैयद शाह गुलाम रसूल था। आपने इतनी लोकप्रियता प्राप्त की कि उस मोहल्ले का नाम, जहाँ आपकी खानकाह मौजूद थी, आपके उपनाम 'शाहजुमा' पर रखा गया। इस खानकाह की जो जिम्मेवारी संस्थापक हजरते मीर सैयद शाह अब्दुल अब्दाल कादिरी बगदादी ने सौंपीं थी, वह आज भी जारी है। आज भी यह खानकाह मानव सेवा को समर्पित है और सैकड़ों गरीब बच्चों को मुफ्त में दीनी शिक्षा दी जाती है।



मीर सैयद शाह का लोकप्रिय मजार, शाहजुमा

## चम्पारण



चम्पारण शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है चम्पा फूलों का अभ्यारण्य (वनोभूमि)। यह भूमि प्राचीन काल से ही महत्वपूर्ण रही है। कहते हैं कि रामायण काल में महर्षि बाल्मीकि का आश्रम था जिसके चारों ओर हरे-भरे वृक्ष, जंगल तथा आकर्षक फूलों की लताएं एवं पौधे बिखरे हुए थे। यह महज संयोग नहीं है कि सम्राट् अशोक के पहले छः स्तम्भ लेखक चम्पारण में लौरिया नंदनगढ़, लौरिया अरेराज और रामपूर्वा से प्राप्त हुए जो इस पुण्य भूमि की ऐतिहासिक महत्ता को भी दर्शाता है।

### पूर्वी चम्पारण

चम्पारण की भूमि ने सूफी आन्दोलन के लिए भी उर्वर जनाधार प्रदान किया। यद्यपि दुर्भाग्यवश बहुतेरे सूफी संतों की दरगाह व मजार के अस्तित्व को आज की तारीख में खोज पाना नामुमकिन-सा है, फिर भी पूर्वी चम्पारण के एक छोटे, किन्तु सबसे पुराने शहर मेहसी में सैयद ख्वाजा अब्दुल हलीम शाह चिश्ती की आकर्षक दरगाह की मौजूदगी और जानमानस में इस दरगाह के प्रति व्यापक आस्था सूफी आन्दोलन के प्रभाव को बयां करता है।

कहते हैं कि हलीम शाह चिश्ती एक मिशन के तहत ख्वाजा अजमेरी के उपदेशों एवं आध्यात्मिक वैचारिकता का प्रचार-प्रसार करने हेतु चिश्ती सिलसिले के 99 सूफी संतों के साथ यहाँ आये थे। किन्तु बाद में वे यहीं बस गये और ख्वाजा अजमेरी के उदाहरणों को चरितार्थ करने में लग गये। उन्होंने ता-उम्र जन-सामान्य की आध्यात्मिक सेवा की एवं मार्गदर्शन किया। एक संत के रूप में हलीम शाह चिश्ती की लोकप्रियता दिन दुगुनी रात चौगुनी बढ़ती गयी। कहते हैं कि अन्तिम मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर के परिवार के सदस्य इस उल्लेखनीय संत के मजार से श्रद्धा व भक्ति रखते थे।

ख्वाजा हलीम शाह चिश्ती ने जीवन में सादगी, सामाजिक सौहार्द एवं साम्प्रदायिक सद्भाव की ऐसी चांदनी बिखेरी जिसने न सिर्फ दशकों तक बल्कि कई शताब्दियों तक अपनी सत्ता बनाये रखी और आम जन उससे सम्पृक्त होते रहे। उसी की परिणति है कि मेहसी के इस फकीर संत की दरगाह पर आज हजारों श्रद्धालु अपनी पूरी आस्था एवं श्रद्धा के साथ नतमस्तक होते हैं। प्रत्येक वर्ष इनका मनाया जानेवाला उस सामाजिक-साम्प्रदायिक सद्भाव का एक अद्भुत नजारा होता है।

स्थानीय स्तर पर सुप्रबन्धित ख्वाजा अब्दुल हलीम शाह चिश्ती का मजार एक आकर्षक स्थापत्य



हलीम शाह चिश्ती का मजार, मेहसी



युसुफ शाह का मजार

भी है। हरे एवं उजले रंगों से रंगा यह मजार एक ऊँचे चबूतरे पर बनाया गया है। मजार के चारों कोनों पर मीनारें बनाई गई हैं और इसकी छत पर एक बड़ा एवं आकर्षक गुम्बद है। लगभग 10 सीढ़ियों को चढ़ने के बाद ऊँचाई पर बने इस मजार के प्रवेश द्वार से साक्षात्कार होता है जिसके दोनों ओर बनी मीनारें इसे आकर्षक बनाती हैं।

कहते हैं कि उस समय यह क्षेत्र घने जंगलों से भरा था और लोगों की बस्ती संत की मठिया या खानकाह से कम-से-कम 3 कि.मी. दूर थी। दरगाह के प्रबन्धन से सम्बद्ध व्यक्तियों के अनुसार पुरानी गंडक नदी इस मजार के बगल से बहती थी। किन्तु कालान्तर में नदी ने अपना मार्ग बदल लिया और दरगाह के बगल से बहने वाली गंडक नदी सूख गई।

खाजा अब्दुल हलीम शाह चिश्ती के मेहसी में आगमन की तिथि को सुनिश्चित करना ऐतिहासिक एवं प्रमाणिक स्रोतों के अभाव के कारण बहुत मुश्किल हैं यद्यपि 1697 की तिथि अंकित एक शिलालेख मजार के बरामदे

की दीवार पर चिपका हुआ मौजूद है जो शायद सूफी हलीम शाह की मृत्यु और मजार के निर्माण के वर्ष से सम्बद्ध है।

कहते हैं कि इस मजार का निर्माण हलीम शाह के एक अभिन्न शिष्य यूसुफ शाह ने करवाया था। सूफी यूसुफ शाह ने अपने आध्यात्मिक गुरु हलीम शाह के मजार के अतिरिक्त अपनी मृत्यु के बाद अपने मकबरे के लिए भी जगह आरक्षित की। अतः यहां एक छोटा-सा मजार यूसुफ शाह का भी मौजूद है। संभवतः हलीम शाह की मृत्यु के बाद इनकी खानकाह का उत्तराधिकार यूसुफ ने ही संभाला था।

स्थानीय स्तर पर प्रचलित एक किंवदन्ती के अनुसार, एक बार एक स्थानीय निवासी महेश राउत अपने बछड़े को चरा रहा था। संयोग से हलीम शाह वहां कैम्पिंग कर रहे थे। उन्होंने महेश राउत से दूध मांगा। राउत हतप्रभ थे कि बछड़े से दूध कैसे निकालूँ? किन्तु हलीम शाह दूध की मांग पर अडिग थे। अतः बछड़ा दुहा गया और राउत बछड़े से दूध निकालने में सफल रहा।

हलीम शाह मुस्कुराये और उन्होंने महेश राउत से कहा कि तुम अपनी कोई मनोकामना मांगो। राउत ने कहा—“हुजूर ! मेरा नाम अनंत काल तक रोशन रहे, इसके लिये मुझे आशीर्वाद दें।” परिणामस्वरूप महेसी का नाम महेश राउत के नाम पर रखा गया। उसे अब्दुल हलीम शाह के मकबरे की सीढ़ियों के नीचे बगल में दफनाया गया जो आज भी यहां अवशेष स्वरूप में मौजूद है।

## पश्चिमी चम्पारण

हाफीज अब्दुल गफूर शाह का जन्म पूर्वी चम्पारण के मुख्यालय (मोतिहारी) से 15 कि.मी. उत्तर में अवस्थित नरकटियांगंज में 1883 में हुआ था। यद्यपि उनके पिता मखदुम बछां खां पेशे से हाकिम थे, किन्तु अब्दुल गफूर बचपन से ही अपनी प्रकृति से सूफी थे। प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही ग्रहण करने के बाद उन्होंने जामिया इस्लामिया कुरानिया से हाफिज की शिक्षा ग्रहण की। जामिया इस्लामिया कुरानिया मझौलिया के निकट सेमरा में अवस्थित एक नामचीन मदरसा है। उसके बाद इलाहाबाद प्रस्थान कर गये और वहाँ अपने आध्यात्मिक गुरु हजरत सैयद इनायत हुसैन अल-हुसैनी, जो स्वयं लखनऊ के थे, का आध्यात्मिक सानिध्य एवं मार्गदर्शन प्राप्त किया।



कहते हैं कि उस समय प्रत्येक वर्ष मझौलिया (पश्चिमी चम्पारण) के घने जंगलों में आग लग जाती थी।

मझौलिया राज के जमींदार के पास प्रत्येक वर्ष आनेवाली इस आपदा को असहाय रूप से सामना करने के अलावा कोई विकल्प नहीं था। प्रत्येक वर्ष इस आपदा से होनेवाली शारीरिक एवं आर्थिक क्षति से वे दुखी एवं निराश थे। एक आम धारणा सी बन गई थी कि यह सब कुछ दुष्ट आत्माओं के कारण हो रहा है। मझौलिया राज के पड़ोसी जमींदारों में से एक नबी जान भी थे। उन्होंने हाफिज अब्दुल गफूर से सम्पर्क किया और इनकी मुलाकात मझौलिया राज के जमींदार से करवाई। दोनों जमींदार ने सूफी संत अब्दुल गफूर से बचाव और राहत के लिए अनुरोध किया।

सूफी अब्दुल गफूर ने मझौलिया के इस घने जंगल में अपना निवास स्थान बनाया, जहां मीलों दूर तक कोई आबादी नहीं थी। कहते हैं उनके कुछ विलक्षण आध्यात्मिक कर्मों एवं प्रयोगों के कारण प्रत्येक वर्ष जंगल में आग लगने से जुड़ी आपदा सदा के लिये समाप्त हो गई। मझौलिया के इसी जंगल में अवस्थित अपने निवास स्थान में अब्दुल गफूर की मृत्यु हो गई।

प्रत्येक वर्ष ईद के 40 दिनों के बाद उनका उस मनाया जाता है यहां बड़ी संख्या में श्रद्धालु, खासकर उत्तर प्रदेश से इकट्ठा होते हैं। इस अवसर पर अन्य परम्परागत अनुष्ठानों के अतिरिक्त चादरपोशी भी होती है और पूरा उस एक समारोह, मेले एवं जबरदस्त मजमे में तब्दील हो जाता है। मझौलिया में अवस्थित इनका मजार बेतिया मुख्यालय से लगभग 10 किमी. दूर है और इस जगह सुलभता के साथ पहुँचा जा सकता है।



# मुजफ्फरपुर



मुजफ्फरपुर शहर न तो प्राचीन काल में और न ही मध्यकाल में, एक महत्वपूर्ण प्रशासनिक, सांस्कृतिक या आर्थिक गतिविधियों का केन्द्र नहीं रहा। इस जिले की वास्तविक पहचान आधुनिक काल में एक व्यावसायिक एवं औद्योगिक केन्द्र के रूप में बननी शुरू हुई और देखते-देखते यह उत्तर बिहार का सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधियों का केन्द्र बन गया। इसकी सूरत बिहार में पटना के बाद सबसे बड़े शहर के रूप में तब्दील हो गयी और कालान्तर में बिहार की 'द्वितीय राजधानी' के रूप में भी विभूषित किया जाने लगा। यहां सूफी सिलसिले की दस्तकें भी कुछ विलम्ब से सूनी व देखी गईं।

मुजफ्फरपुर शहर जब एक छोटे से कस्बे के रूप में मौजूद था, जिसे आज की तारीख में पुराना बाजार के नाम से जाना जाता ह। यहां के एक मुस्लिम रंगरेज व धोबी परिवार में एक व्यक्तित्व मन्नान शाह भी था। उसके आध्यात्मिक लगाव एवं प्रतिबद्धता के कारण परिवार के अन्य लोगों ने उसे रंगरेजी एवं धोबी के घरेलू कार्य से मुक्त कर दिया और उसके उपदेशों एवं ज्ञान से लोग लाभान्वित होने लगे। बाद में चलकर यह व्यक्ति हजरत दाता मुजफ्फर शाह के नाम से एक प्रसिद्ध सूफी संत हुआ। कहते हैं कि कालान्तर में मुजफ्फरपुर शहर का नाम इसी सूफी संत के नाम पर पड़ा।

दुर्भाग्यवश इस सूफी संत का जीवन-वृत्त बहुत सुस्पष्ट नहीं है। कहते

बिहार में सूफ़ी आंदोलन / 82



मुजफ्फर शाह का मजार, पुरानी बाजार

हैं कि हजरत दाता मुजफ्फर शाह का कब्र इनके छोटे से निवास स्थान के एक कमरे में बनाया गया। 1934 के भूकम्प में शहर के अन्य मकानों के साथ यह मकान भी धराशायी हो गया। बाद में इसकी खोज पुरानी बाजार के मुख्य सड़क के बीचोंबीच की गई जो आज तक मौजूद है।

प्रत्येक वर्ष जनवरी माह के प्रारम्भ इन पीर की याद में उर्स का आयोजन होता है जिसमें सभी समुदाय के लोग पीर बाबा का आशीर्वाद प्राप्ति की अपेक्षा में बढ़े पैमाने पर इकट्ठा होते हैं। उल्लेखनीय है कि उनके उर्स का आयोजन प्रत्येक वर्ष जन-सहायोग से स्थानीय प्रशासन द्वारा उपयुक्त जगह पर आयोजित किया जाता है।

मुजफ्फरपुर के सुप्रसिद्ध चतुर्भुज स्थान में एक अन्य उत्तरवर्ती सूफी संत हजरत दाता कम्बल शाह चिश्ती का लोकप्रिय मजार मौजूद है। इनका मूल नाम मौलाना ख्वाजा हाजी असगर अली खाँ और जन्म स्थान दरभंगा था। इनकी धार्मिक-आध्यात्मिक शिक्षा लखनऊ में पूरी हुई। 1885 में आप मुजफ्फरपुर आ गये और यहाँ अपनी खानकाह की नींव डाली। इनकी पहचान हाथ में छड़ी और कंधे पर कम्बल रखने के रूप में थी, जो आज भी यहाँ संरक्षित है और वार्षिक उर्स के अवसर पर इसका प्रदर्शन किया जाता है। किन्तु इनकी वास्तविक पहचान जीवन में सादगी, त्याग एवं स्थानीय लोगों से बेपनाह मुहब्बत करने के रूप में थी। इन्होंने घोषणा कर रखी थी कि “मैं यहाँ के लोगों के लिये हूँ और यहाँ के सभी लोग मेरे हैं। शान्ति, सद्भाव व सद्गति (भलाई) मेरा धर्म है।” कहते हैं कि एक दफा इनके जीवन-काल में मुजफ्फरपुर में अकाल पड़ा, जिसमें हजारों लोगों की मृत्यु हो गई। हजरत दाता कम्बल शाह ने ईश्वर से प्रार्थना की और वे शहर को इस आपदा से बचाने में बहुत हद तक सफल रहे।

1903 में हजरत दाता की मृत्यु अपने खानकाह में हो गई, किन्तु आज भी स्थानीय लोगों को अपने प्यारे पीर बाबा के प्रति असीम विश्वास एवं श्रद्धा है।

इनके मजार पर सभी समुदाय एवं वर्ग के लोग अपनी मन्त्रों मांगने एवं श्रद्धा सुमन में चादर चढ़ाने हेतु वर्ष भर आते रहते हैं। उर्स के अवसर पर



कम्बल शाह चिश्ती का मजार, चतुर्भुजस्थान



जन-समुदाय का एक बड़ा जमघट लगता है और यह कार्यक्रम एक मेला में तब्दील हो जाता है। इस अवसर पर बाबा के काले कम्बल, छड़ी, अमामा तथा अन्य सामग्री जियारत के लिये प्रदर्शित किये जाते हैं। इनका मजार एक खूबसूरत रंग-बिरंगा स्मारक है।

एक अन्य उत्तरवर्ती किन्तु महत्वपूर्ण सूफी संत हजरत शाह तेग अली आबादानी का मजार मुजफ्फरपुर के गोरयारा कस्बा में मौजूद है। हजरत शाह तेग अली आबादानिया सिलसिला के छठी पीढ़ी के संत थे। आप का जन्म 1882 में गोरयारा (मुजफ्फरपुर) में हुआ था। आपने प्रारम्भिक शिक्षा हजरत

मौलाना सुबहान अली से ग्रहण करने के बाद कलकत्ता के मदरसा-ए-आलिया से उच्च शिक्षा ग्रहण की। किन्तु आपके वास्तविक आध्यात्मिक गुरु मुंगेर के हजरत मौलाना शाह समी अहमद थे, जिनकी सेवा में आप लम्बे समय तक रहे। आप कई दशक तक लालगंज (जिला वैशाली) के सूफी संत हजरत मौला अली लालगंजवी के सानिध्य में तपस्या, प्रार्थना एवं आध्यात्मिक ज्ञान में लीन रहे। अंतः आपने अपने जन्म-स्थल गौरयारा लौटने का फैसला किया, किन्तु यहां से प्रस्थान करके आपने एक छोटे से कस्बे सुरकाही में बस गये और यहाँ अपनी खानकाह की स्थापना की। आज यह खानकाहे तेगिया आबादानिया के नाम से प्रसिद्ध है। आपने यहां एक मदरसे की भी नींव डाली। इतिहास साक्षी है कि आपकी मौजूदगी एवं कृतित्व ने इस छोटे से कस्बे को सम्पूर्ण उत्तर भारत में प्रसिद्धि के नक्से पर ला खड़ा किया था। बिहार से लेकर बंगाल तक आपके मुरीदों एवं श्रद्धालुओं की एक बड़ी संख्या थी। 1958 में आपकी मृत्यु अपनी खानकाह आबादानिया सुरकाही शरीफ (मुजफ्फरपुर) में हो गई, जहां अपनी माता एवं धर्मपत्नी के साथ आपका मजार मौजूद है और स्थानीय लोगों के बीच आस्था एवं श्रद्धा का केन्द्र-बिन्दु है। 'अनवारे सूफिया' में हजरत शाह तेग अली आबादानी मुजफ्फरपुरी की जीवनी से रू-ब-रू हुआ जा सकता है और 'मजाहिरे कुतबुल आनाम' में हजरत से जुड़ी चमत्कारी घटनाओं की रोचक प्रस्तुति की गई है।

मुजफ्फरपुर के रोहुआ कस्बे में सैयद अली अब्दाल कादरी की खानकाह भी तिरहुत क्षेत्र की लोकप्रिय खानकाहों में से एक थी। इनकी दरगाह आज भी आमजनों के बीच आस्था एवं श्रद्धा का केन्द्र बना हुआ है। इसी प्रकार हजरत काजिन उला शतारी के छोटे बेटे सैयद शाह अब्दुर्रहमान शतारी की खानकाह भी मुजफ्फरपुर के सरैयागंज में लोकप्रिय थी, किन्तु आज सिर्फ मजार ही शेष है।



## दरभंगा



यह एक रोचक तथ्य है कि दरभंगा का मूल नाम 'दर-ए-बंगाल' अर्थात् बंगाल में प्रवेश का मार्ग था। मध्यकाल के अधिकांश समय में यह बंगाल प्रांत या शासन का हिस्सा बना रहा। मुगल काल में यह अफगान शक्ति या विद्रोहियों का एक महत्वपूर्ण केन्द्र के रूप में मौजूद रहा। इसके साथ यहाँ सूफी आन्दोलन का भी एक लम्बा सिलसिला दृष्टिगोचर होता है।

बिहार की खानकाहों की चर्चा के सिलसिले में दरभंगा में खानकाहे समरकन्दिया का उल्लेख भी अनिवार्य है। इस खानकाह की स्थापना सैयद शाह फिदा हुसैन अब्दुल करीम ने की थी। आप मूलतः समरकन्द (काबूल) के रहनेवाले थे। 1874 में इन्होंने दरभंगा को अपनी कर्म-भूमि बनाई और बीबी विलायत से शादी कर ली। बीबी विलायत दरभंगा के प्रतिष्ठित जागीरदार दरभंगी खाँ की बेटी थी। इन्होंने खानकाह के साथ-साथ एक मदरसे की भी स्थापना की। हजरत सैयद शाह की 1897 में अपने खानकाह में मृत्यु हो गई। वे अपने मुरीदों की अच्छी संख्या छोड़ गये थे जो समरकन्दिया सिलसिला की वैचारिक रोशनी से आमजनों को सम्पूर्ण करते रहे। हजरत सैयद शाह फिदा हुसैन के पुत्रों ने मदरसा के पुनर्निर्माण के साथ-साथ यहाँ एक मस्जिद तथा एक बहुत बड़ा तालाब भी बनवाया। दरभंगा का यह खानकाहे समरकन्दिया आज भी अपनी सेवा एवं मार्गदर्शन लोगों को प्रदान कर रहा है। यहाँ आज भी 200 से अधिक बच्चे रहने एवं खाने की मुफ्त व्यवस्था के साथ पढ़ते हैं।



अब्दुल करीम का मजार

यह मजार सभी समुदाय के लोगों की आस्था का महत्वपूर्ण केन्द्र है। पन्द्रहवें इस्लामिक माह के 1 से 5वें दिन तक यहाँ उर्स का वार्षिक आयोजन होता है, जहाँ सामाजिक-धार्मिक सौहार्द के सिलसिले का विहंगम दृश्य अस्तित्वमान होता है। इस खानकाह से लगभग 2 कि.मी. दूर पर इसी सिलसिले के एक अन्य उपदेशक भिका शाह सैलानी का भी मजार मौजूद है।



भिका शाह का मजार

जीवन सात्री एवं सद्भाव का मिसाल था। कहते हैं कि भिका शाह सैलानी धातु के बर्तन के बदले लकड़ी के बर्तन में खाना बनाते और खाते थे जो आज भी इस मजार में सही-सलामत मौजूद है। इनका मजार लगभग 20 फीट ऊँचाई पर बनाया गया है। हजरत का आशीर्वाद प्राप्ति हेतु सालों भर लोगों के आने का तांता लगा रहता है। आपके श्रद्धालु ता-उम्र आप पर स्नेही आस्था रखते हैं। आपका उर्स जो 12वें इस्लामिक माह के 13 से 17वें दिन तक मनाया जाता है, जो महोत्सव व बड़े मेले का रूप अखिल्यार कर लेता है।



भिका शाह का कबूल

दरभंगा के मीर्जा पोखर के पूर्वी हिस्से में एक अन्य लोकप्रिय संत हजरत आशिक शाह जिलानी का मजार मौजूद है। कहते हैं कि आप समरकंद से दरभंगा जन-कल्याण व धर्मोपदेश के लिये आये। लोक किवदन्तियों के अनुसार, दो शताब्दी पहले बुजुर्ग संतों का एक समूह समरकंद से दरभंगा आया था। इनमें कुछ लोक दरभंगा के दिग्ही पोखर के

हजरत मखदूम भिका शाह सैलानी का मजार विशाल दिग्ही पोखर के पश्चिम में अवस्थित है। आप शाह फिदा हुसैन अब्दुल करीम के धार्मिक-वैचारिक शिक्षक थे। इनका



पश्चिम तथा कुछ लोग मीर्जा पोखर के पूरब बस गये। जल्द ही आस-पास के लोग इन संतों से प्रभावित हुये। आज यहां दोनों ही जगहों पर संतों के मजार मौजूद हैं और श्रद्धालुओं का यहां आगमन इस उम्मीद के साथ हर दिन होता है कि बाबा

उनका कल्याण जरूर करेंगे। बहुत सारे श्रद्धालु नियमित उपस्थिति दर्ज करने वाले भी होते हैं। उर्स के अवसर पर श्रद्धालुओं का उल्लेखनीय जमघट लगता है, जिसमें आस-पास के लोगों के अतिरिक्त नेपाल, बंगाल और उत्तर-प्रदेश से आये कुछ श्रद्धालु होते हैं। जियारत और चादर-पोशी जैसे धार्मिक कार्य होने के साथ-साथ उर्स के अवसर पर मेला का भी सफल आयोजन होता है। इस्मालिक माह जिल्हज्जा में मजार प्रबन्ध समिति के द्वारा बाबा आशिक शाह के वार्षिक उर्स का आयोजन किया जाता है। 18वें शताब्दी से यहां यह परम्परा चल रही है कि श्रद्धालु उर्स के बाद सैयद शाह फाजिलत हुसैन के मजार पर चिराग जलाने के बाद बाबा आशिक शाह जिल्लानी के मजार पर मन्त्र मांगने जाते हैं। यह माना जाता है कि ऐसा करने से मनोकामना पूरी होती है। हिन्दू हों या मुस्लिम इस मजार के प्रति समान रूप से आस्था रखते हैं और इस प्रकार यह केन्द्र साम्प्रदायिक सद्भाव के ऐतिहासिक सिलसिला की भूमिका को जारी रखता है।



हजरत आशिकशाह का मजार

## मधुबनी



बिहार के मधुबनी जिला में सूफी आंदोलन की मौजूदगी एवं प्रभाव अपेक्षाकृत कम दृष्टिगोचर होता है। फिर भी इस जिला के गैर-तराई क्षेत्रों खासकर दरभंगा के निकटवर्ती या सीमावर्ती प्रखण्डों, जैसे— विस्फी, मधुबनी, पण्डौल, झंझारपुर, लखनौर, मधेपुर और घोघरडिहा प्रखण्ड में कई गुमनाम सूफी संत के अत्यन्त साधारण व छोटे मजार सूफी संतों की मौजूदगी एवं उनकी भूमिका के सबूत की बयां करते हैं। किन्तु ये अत्यन्त साधारण-सा दिखने वाले मजार भी स्थानीय स्तर पर लोक-आस्था का स्मरणीय केन्द्र हैं, जो आम आमतौर पर सम्प्रदाय एवं वर्ग की सीमा से निरपेक्ष अपना वजूद रखते हैं।

मधुबनी जिला मुख्यालय से लगभग 55 कि.मी. उत्तर-पूरब चनौरागंज पंचायत (झंझारपुर प्रखण्ड) के ताजपुर गांव में मखदूम पीर जहाँनिया का एक लोकप्रिय मजार मौजूद है। यह ग्रामीण एवं लोक अभिव्यक्ति देने वाला एक अत्यन्त ही साधारण-सा दिखनेवाला मजार भले ही हो, किन्तु इसकी लोकप्रिय असाधारण है। इस मजार का वार्षिक उर्स ईद-उल-जोहा के एक दिन पूर्व आयोजित होता है। उर्स के अवसर पर न सिर्फ बड़ी संख्या में स्थानीय लोगों की बल्कि नेपाल, दरभंगा, सुपौल, समस्तीपुर तथा अन्य निकटवर्ती जिलों से एक अच्छी संख्या में लोगों की भागीदारी होती है। उर्स का पूरा कार्यक्रम एक उत्सव, एक उत्साह भरे मेला में तब्दील हो जाता है।

हिन्दू हों या मुसलमान सभी पीर बाबा को एक चमत्कारी एवं जन-परोपकारी शक्ति मानते हैं। दुर्भाग्यवश इस सूफी संत के जीवन-वृत्त के बारे में विस्तृत जानकारी का अभाव है तथा ऐतिहासिक साक्ष्य भी कम ही उपलब्ध हैं। किन्तु स्थानीय लोगों एवं वृद्धजनों के अनुसार यह मजार उनके दादा-छरदादा के समय के पूर्व से मौजूद है। यद्यपि यह मजार कच्ची मिट्टी और ईंट का बना साधारण सा स्थापत्य है। स्थानीय लोगों के कथनानुसार, पहले यह कच्ची मिट्टी का बना एक चबूतरा (छोटा टीला) मात्र था। इस मजार को देखने से यह स्पष्ट होता है कि पीर जहाँनिया को यद्यपि जन लोकप्रियता तो मिली किन्तु उन्हें राजकीय, शाही या अभिजात वर्ग का संरक्षण या सहयोग प्राप्त नहीं हुआ। आज भी यह मजार एक अत्यन्त पुराने एवं विशालकाय वटवृक्ष के नीचे खुले खेत बधार के बिरानगी में मौजूद है।



## भागलपुर



प्राचीन काल में भागलपुर अंग-प्रदेश के नाम से जाना जाता था जिसकी राजधानी चम्पा थी। आज भी इस शहर के एक पश्चिमी उप-नगर को चम्पा नगर के नाम से जाना जाता है। मुसलमानों के आगमन एवं मुस्लिम सत्ता के पूर्व यह क्षेत्र बौद्ध ज्ञान एवं उनके विहारों की अत्यधिक मौजूदगी के लिये जाना जाता था। यहाँ मौजूद विक्रमशिला बौद्ध महाविहार ज्ञान एवं अध्यात्म के लिये एक प्रसिद्ध विश्वविद्यालय के रूप में ख्याति अर्जित कर चुका था, जहाँ हजारों देशी-विदेशी बौद्ध-धर्मावलम्बी रह कर उच्च शिक्षा ग्रहण करते थे। किन्तु 1203 ई. में बख्तियार खिल्जी ने इस विश्व प्रसिद्ध महाविहार को नष्ट कर दिया और इसके साथ ही अन्य छोटे-छोटे बौद्ध-विहार भी अपना अस्तित्व खोते चले गये। किन्तु कालान्तर में भागलपुर के अस्तित्व एवं स्वरूप के बारे में पर्याप्त जानकारी हेतु स्रोतों का अभाव है। यद्यपि 1573 तथा 1575 में अकबर के बिहार अभियान के परिप्रेक्ष्य में भागलपुर का उल्लेख देखने को मिलता है। अकबर के शासन के परवर्ती काल में जब उसने अपने एक बड़े सेना नायक राजा मानसिंह को बिहार का गवर्नर बनाया तो उसने भागलपुर को एक प्रशासनिक शक्ति दी और उसे एक फौजदार प्रशासक का मुख्यालय बनाया।



भागलपुर का गंगा धाट

17वीं शताब्दी के प्रारम्भ से भागलपुर को इस उपमहाद्वीप में पुनः ख्याति प्राप्त हुई और यह ख्याति मुख्यतः सूफी संतों की गतिविधियों एवं उनके विलक्षण खानकाहों की मौजूदगी के कारण हुई। सुप्रसिद्ध सूफी संत हजरत मौलाना शहबाज मुहम्मद भागलपुरी ने अपनी खानकाह भागलपुर रेलवे जंक्शन के निकट स्थापित किया। उस



खानकाह शहबाजिया, भागलपुर

समय यह एक छोटा-सा गांव था। शहबाज मुहम्मद द्वारा स्थापित भागलपुर की यह खानकाह शहबाजिया आज भी बिहार की महान खानकाहों में से एक है। शहबाज मुहम्मद अपने परिवार के साथ भागलपुर आकर बस गये और 1577 में खानकाहे शहबाजिया की स्थापना की। आप एक महान सूफी संत होने के साथ-साथ नामचीन विद्वान भी थे। कुरान, हदीस एवं शरीयत के किसी विषय पर अस्पष्टता एवं द्वन्द्व होने पर दिल्ली का शाही दरबार हो या फिर बड़े विद्वानों का वर्ग, आपसे सलाह व मार्गदर्शन लेना आवश्यक समझता था। जहाँगीर काल में राजकुमार खुर्रम (शाहजहाँ) भी आपकी खानकाह में दुआ के लिये हाजिर हुआ और ता-उम्र आपसे प्रभावित रहा। शाहजहाँ बार-बार कहा करता था कि “वे (शहबाज मुहम्मद) हमारे काल के अबू हनीफा हैं।”

आपने अपने खानकाह के बायें बाजू में एक मदरसे की भी स्थापना की। इस मदरसे की लोकप्रियता इतनी अधिक थी कि दिल्ली, मुल्लान, लाहौर आदि जैसे दूर-प्रदेश से भी लोग इस्लामिक शिक्षा ग्रहण करने यहां आते थे।

आपके मदरसे के आसपास का इलाका मौलवियों से भर गया और कालान्तर में मौलवियों की बहुलता के कारण मुल्लाचक कहलाने लगा। कहते हैं कि शहबाज मुहम्मद के मदरसे में छात्रों की संख्या 500 तक पहुंच गयी थी।

1640 ई. में सूफी संत शहबाज मुहम्मद की मृत्यु अपने खानकाह में हो गई। मुगल बादशाह ने अपने प्रिय संत की याद में उनका मजार तथा उससे सम्बद्ध एक शाही मस्जिद बनवाई। आज यह बगदादी मस्जिद या जामा मस्जिद के नाम से जाना जाता है। यह अपने किस्म का अजूबा मजार है जो एक ही छत से मस्जिद से सम्बद्ध है, किन्तु दोनों के गुम्बद अलग-अलग हैं। मस्जिद का गुम्बद मजार के गुम्बद की अपेक्षा काफी बड़ा है। मस्जिद तथा मजार के बीच में एक छोटा हौज है जो नवाज अदा करने के पूर्व ‘बाजू’ के काम आता रहा होगा। दरगाह परिसर में प्रवेश करने के लिये भव्य प्रवेश-द्वार मुगल शासक फरुखसियर के आदेश पर नवाब दलील खाँ ने बनवाया था। इस प्रवेश द्वार को सलामी दरवाजा, जुलूखाना या घड़ी खाना भी कहते हैं।



हजरत शाहबाज मोहम्मद भागलपुरी का दरगाह



उर्स के अवसर पर चादरपोशी

प्रवेश द्वार के अन्दर आने पर सामने शाही हौज है जिसे तत्कालीन फौजदार मिर्जा इब्राहिम हुसैन खाँ ने बनवाया था। इसी प्रकार 1549 ई. में बने मदरसे को कई शासकों एवं पदाधिकारियों द्वारा भिन्न-भिन्न समय पर बनवाई गई। किन्तु बार-बार की मरम्मती, नवीनीकरण एवं निर्माण के कारण दरगाह की भव्यता में तो चार चाँद लग गये किन्तु इसके आगे पुराना मूल ढांचा काफी दब गया है, फिर भी वह नष्ट नहीं हुआ है और दिखता है।

इस खानकाह के पास लगभग 300 हस्तलिखित पुरानी पुस्तकें आज सुरक्षित हैं और इस दृष्टि से इसे बिहार की अत्यन्त पुराने पुस्तकालय में से एक समझा जायेगा। महान मुगल शासक अकबर के नवरत्नों में से एक महत्वपूर्ण रत्न अब्दुल फजल, जिसने आईने अकबरी नाम अपनी विख्यात पुस्तक की रचना की थी, की एक स्वर्णाक्षरों से लिखित पुस्तक यहाँ सुरक्षित है। इसके अतिरिक्त 650 वर्ष पूर्व लिखित धार्मिक पुस्तक 'बुखारा शरीफ' तथा अन्य दुर्लभ एवं मूल्यवान पुस्तकें इस खानकाह के कुत्खाना में सुरक्षित हैं।

इस खानकाह के द्वारा प्रत्येक वर्ष तीन दिनों का उर्स 'सफर' का आयोजन होता है जिसमें देश भर से श्रद्धालुओं की भागीदारी होती है। इस मजार के प्रति आस्था सभी समुदाय एवं वर्गों में सामान्य रूप से देखी जा सकती है। यह समूचा कार्यक्रम एक महोत्सव में तब्दील हो जाता है और सामाजिक सौहार्द एवं सहानुभूति का अविस्मरणीय नजारा वक्त पर अपनी अमिट छाप अंकित करता है। इसके अतिरिक्त सालों भर श्रद्धालुओं का मजार पर आने और मन्त्रं मांगने का सिलसिला चलता रहता है। आप यहाँ ऐसे श्रद्धालुओं को भी देख सकते हैं जो दीन-हीन की तरह सर झुकाने पीर बाबा के मजार के आगे रोते हुए मन्त्रं पूरी करने हेतु दया की भीख मांगते नजर आयेंगे।

भागलपुर के खलीफाबाग मुहल्ले में एक अन्य सूफी खानकाह आज भी आबाद है। यह पुरानी खानकाह हजरत मखदूम हुसैन पीर दमड़िया की यादगार है। सीवान के सूफी संत हजरत मखदूम सैयद हसन दानिशमन्द के वंशज 'पीर दमड़िया' के नाम से मशहूर हुए। आपके बड़े बेटे अहमद पीर दमड़िया हाजीपुर चले आये और यहाँ मीनापुर में खानकाह की नींव डाली जबकि छोटे बेटे हुसैन पीर दमड़िया भागलपुर आ गये और यहाँ खलीफाबाग में लोकप्रिय खानकाह को आबाद किया। यह खानकाह आज भी अच्छी तरह से व्यवस्थित है। इसके ऐतिहासिक मूल ढांचा को परवर्ती काल में बहुत कम नुकसान पहुंचाया गया है, किन्तु अत्यधिक अतिक्रमण तथा मजार के चारों तरफ दुकानों की मौजूदगी ने इसके रोनक व सज्जा को भारी नुकसान पहुंचाया है। इस खानकाह के पास हस्तलिखित पाण्डुलिपियों, दुर्लभ एवं बहुमूल्य पुस्तकों का एक समृद्ध पुस्तकालय भी है।

भागलपुर शहर के निकट चम्पा नगर में एक अज्ञात सूफी संत का मकबरा स्थानीय लोगों के बीच काफी लोकप्रिय है। यह मकबरा एक वर्गाकार ऊँचे चबूतरे पर बनाया गया है। यह एक बड़े गुम्बद एवं एक बड़े कमरे वाला



मकबरा है। इसके बगल से बहनेवाला नाला जो आगे बढ़कर गंगा नदी में मिल जाता है, के कारण इसके पश्चिमी भाग को नुकसान पहुंचा है। मकबरे के विशाल एकल कमरे के बीचों-बीच तीन कब्र हैं, जिसमें एक पत्थर से आच्छादित है तथा दो ईंटों से। इस मकबरे तथा इससे सम्बद्ध सूफी के बारे में स्थानीय स्तर पर कई रोचक एवं लोकप्रिय कथाएं प्रचलित हैं। अभिलेखानुसार इसका निर्माण 1632-33 ई. में मुगल बादशाह जहाँगीर के पुत्र राजकुमार परवेज ने अपने एक प्रशासक खाजा अहमद समरकंदी से करवाया था जब वह बिहार का गवर्नर (सूबेदार) था।

इसके अतिरिक्त भागलपुर जिला के कहलगांव तथा भागलपुर शहर के काजीचक मोहल्ला में दो मस्जिदें क्रमशः अकबर एवं औरंगजेब के शासनकाल में बनायीं गयीं। इन दोनों ही मस्जिदों के स्थापत्य एवं सज्जा में हिन्दू-इस्लामिक समन्वित संस्कृति का प्रभाव दिखता है और आज की तारीख में दोनों ही मध्यकालीन ईमारत की स्थिति बेहद नाजुक है।

भागलपुर के व्यस्ततम् घूरन पीर बाबा चौक पर अवस्थित उनका मजार

सभी समुदाय के लोगों के विश्वास का एक लोकप्रिय स्थल है। घूरन पीर शाह का यह मजार आने-जाने वाले सभी आगन्तुकों को अपनी ओर आकर्षित करता है। मारगोसा पेड़ की छाया के नीचे स्थापित यह मजार तहसील के निकट है और एक पवित्र स्थान के रूप में लोकप्रिय है। ऐतिहासिक स्रोत



बताते हैं कि पीर घूरन शाह के समय में यहां घना जंगल था तथा स्थानीय लोगों के बीच बाबा मुहब्बत एवं सदूभाव का उपदेश एक फकीर की तरह देते रहते थे। भागलपुर रेलवे स्टेशन से सिर्फ 3 किलोमीटर पर अवस्थित इस मजार पर साम्प्रदायिक दंगों के दिनों में भी दोनों समुदाय के श्रद्धालुओं एवं आगन्तुकों के नियमित आने का सिलसिला निर्बाध बना रहा। यहां प्रत्येक वर्ष दो दिवसीय उर्स का कार्यक्रम हर्षोल्लास के साथ मनाने की परम्परा है।

भागलपुर के शाह जुंगी मुहल्ले में हजरत लाल मोहम्मद शाह जुंगी की एक प्रसिद्ध मजार है। 1334 में हजरत काबुल से भागलपुर आये और यहीं बस गये। आप आध्यात्मिक संत (सूफी) होने के साथ-साथ एक महत्वपूर्ण समाज सुधारक भी थे। कहते हैं कि हजरत शाह जुंगी हिन्दू विधवाओं की दयनीय स्थिति देखकर काफी मर्माहत हुए थे। उन्होंने भारतीय संदर्भ में मौजूद लिंग-विभेद का विरोध किया और समाज सुधार की वकालत की। उन्होंने तत्कालीन समय मौजूद सती प्रथा को अमानवीय एवं धर्म-विरुद्ध बताया।



हजरत शाह जुंगी का मजार शरीफ



हजरत शाह जुंगी का कब्र

इनका आकर्षक मजार लगभग 50 फीट ऊँचे पहाड़ी पर मौजूद है जिसे किसी राजा, प्रशासक या सामंत ने नहीं बनाया बल्कि स्थानीय लोगों के द्वारा श्रद्धावश अपने रहनुमा पीर के लिये बनाया गया। इस मजार के परिसर में नवाज के लिये एक इबादतखाना, एक ईदगाह एक मदरसा तथा एक ऊँचे चबूतरे पर बना मजार है। मजार पूरी तरह सुप्रबन्धित है और यह अब स्थानीय लोगों के सहयोग से सम्पूरित किया जाता है। मदरसे का निर्माण 1980 में आलिम स्तर तक के इस्लामिक शिक्षा हेतु किया गया था, जहां पड़ोसी जिलों के छात्र आवासीय सुविधा के साथ पढ़ते हैं। प्रत्येक वर्ष हजरत जुंगी की याद में यहां दो दिवसीय उर्स का आयोजन होता है।



# मुंगेर



एक प्राचीन शहर के रूप में मुंगेर की चर्चा महाभारत काल में भी देखने को मिलती है। 10वीं शताब्दी में मध्य एशिया के प्रसिद्ध विद्वान अल्बेरुनी ने भी 'मुंगिरी' नाम से इसका उल्लेख किया है। इस शहर का वर्तमान नाम प्रो. इम्तियाज अहमद के अनुसार मध्यकाल में स्वरूप ग्रहण किया। सामरिक दृष्टिकोण से इस शहर की भौगोलिक स्थिति अत्यन्त महत्वपूर्ण थी इसलिये दिल्ली सल्तनत और बंगाल के शासक के बीच इस शहर पर नियंत्रण हेतु संघर्ष होना अपरिहार्य था क्योंकि इसे पूर्वी भारत में प्रवेश हेतु प्रस्थान बिन्दु समझा जाता था। मुगल शासन में भी यह एक मजबूत सैनिक केन्द्र बना रहा और कम्पनी शासन ने भी यही स्थिति कमाबेश बनाये रखा।

बिहार के प्राचीनतम सूफी संतों में से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सूफी संत शाह नफेय का मजार एक बेहद महत्वपूर्ण मध्यकालीन स्मारक के रूप में मुंगेर में मौजूद है। 1926 में प्रकाशित मुंगेर गजटीयर के अनुसार इनका मूल नाम अबू ओबेद था और वे पर्सिया (ईरान) के रहनेवाले थे। सुप्रसिद्ध सूफी संत ख्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती के आमंत्रण पर आप भारत आये और अजमेर शरीफ में ख्वाजा के अभियान से सम्बद्ध हो गये। कहते हैं कि ख्वाजा की सलाह पर पीर शाह नफेय 1176 में मुंगेर आये और यहां बस गये। आपने उदार धार्मिक विचारों का प्रचार प्रसार किया जो आगे चलकर समन्वित संस्कृति की स्थापना में सहायक बना। प्रो. इम्तियाज अहमद के अनुसार, संभवतः इनकी मृत्यु 1197 ई. में हुई। शायद किसी





मौजूद था। कहते हैं कि जब अलाउद्दीन हुसैन शाह का पुत्र दन्याल बिहार का सूबेदार (गवर्नर) था तो उसने स्वप्न में देखा व महसूस किया कि पीर के कब्र से कस्तूरी की खुशबू आ रही है। उसने 1497 ई. में पीर शाह नफेय के कब्र पर एक सुन्दर मजार बनवाया तथा मुंगेर किले के दक्षिणी द्वार का जीर्णोद्धार हुआ। लगभग 100 वर्ग फुट में बना यह मजार लगभग 25 फुट ऊँचे प्लेटफॉर्म पर बनाया गया है। मकबरे के ऊपर दो गुम्बद तथा चारों कोण पर मीनारें बनाई गई हैं। यह मध्यकालीन स्थापत्य कला का सुन्दर नमूना है किन्तु 1934 के भूकम्प ने इसकी मूल संरचना को काफी नुकसान पहुंचाया था। कुछ इतिहासकारों के अनुसार वर्तमान संरचना बहुत बाद की अवधि की है और यह मूल अग्रभाग की सभी विशेषताओं को लगभग समाप्त कर चुकी है।

किले के अन्दर अन्य स्मारकों में महल का अवशेष शामिल है जिसके बारे में कहा जाता है कि इसे शाहजहाँ के पुत्र शाह शुजा ने 1657-58 के उत्तराधिकार युद्ध में पराजित होने के बाद इसे बनवाया था जब उसने एक शरणार्थी के रूप में पूर्वी भारत में शरण ली थी। किन्तु इस किले का पूर्ण

ने इनकी हत्या कर दी थी। उन्हें मुंगेर किले के दक्षिणी द्वार के अन्दर दफनाया गया। अतः यह विश्वास किया जाता है कि मुंगेर के किले का अस्तित्व भारत में गुलाम वंश (प्रारम्भिक मुस्लिम शासन) के पूर्व से ही

जीर्णोद्धार, मरम्मती एवं अन्य निर्माण मूलतः बंगाल के नवाब मीर कासिम के द्वारा कराया गया।

मुंगेर में कई ऐसे मजार हैं जिनकी पहचान सुनिश्चित करना असम्भव है कि यह किस सूफी संत से सम्बद्ध है। उसी प्रकार वहाँ ऐसे कई नामचीन सूफी संत भी थे जिनके मजार के अस्तित्व की खोज आज सम्भव नहीं है। ऐसे ही एक सूफी संत मुस्तफा थे जिनका मजार शहर के उपनगर दिलावरपुर में अवस्थित था। किन्तु आज की तारीख में उसके मजार की पहचान या खोज निकालना संभव नहीं है। डी. आर. पाटिल के अनुसार, मुस्तफा सूफी बादशाह अकबर के आमंत्रण पर फारस (ईरान) से भारत आये थे और यहाँ मुंगेर शहर के बाहर एकान्त में बस गये। आप उदार धार्मिक एवं आध्यात्मिक विचार के प्रवक्ता थे।

इसी प्रकार मुंगेर के निकट सूरजगढ़ा उपनगर में एक अन्य लोकप्रिय सूफी संत शाह निजामुद्दीन गुलाम अली मौला का लोकप्रिय मजार मौजूद है।



मजार शरीफ में नफेय परिवार का कब्र

आपके नाम पर ही उस स्थान, जहां मजार मौजूद है, का नाम मौला नगर पड़ा। आप मदीना (अरब) के सूफी संत सैयद अहमद के सुपुत्र थे और 18वीं सदी के पूर्वाद्ध में यहां आकर बस गये थे। आपकी लोकप्रियता इतनी अधिक थी कि बंगाल के ताकतवर नवाब अलीवर्दी खां भी आपके एक उल्लेखनीय शिष्य बने। आपने यहां एक सम्मानीय मदरसा, मस्जिद एवं खानकाह की स्थापना की। शाह निजामुद्दीन गुलाम अली मौला द्वारा स्थापित खानकाह आज भी आबाद एवं प्रसिद्ध है और न सिर्फ खानकाह की बल्कि मदरसा, मस्जिद आदि समेत सभी निर्माण की स्थिति कमोवेश अच्छी है।

मुंगेर में एक अन्य प्रसिद्ध खानकाह की स्थापना 1901 में हजरत मौलाना शाह मुहम्मद अली मुंगेरी द्वारा की गई। आप सूफी संत हजरत शाह फज्लुर्हमान गंजमुरादाबादी के एक मुरीद और खलीफा भी थे। शाह मुहम्मद अली मुंगेरी न सिर्फ एक सूफी संत थे बल्कि आप एक महान् मुस्लिम स्वतंत्रता सेनानी एवं दृष्टिप्रक व्यक्ति भी थे। इन्होंने अपने खानकाह परिसर



खानकाह-ए-रहमानिया

में एक विशाल मदरसे की भी स्थापना की। आज आपके द्वारा स्थापित मदरसे में न सिर्फ धार्मिक शिक्षा का बल्कि समकालीन शिक्षा का एक बड़ा केन्द्र है, जहाँ आवासीय व्यवस्था के साथ छात्रों के लिये उर्दू शिक्षा, आई.आई.टी. की कोचिंग, फाजिल स्तर की शिक्षा आदि की मुकम्मल व्यवस्था मौजूद है। इसके अतिरिक्त यह खानकाह गरीबों के लिये समय-समय पर चिकित्सा सेवा एवं कार्यक्रम को भी

उपलब्ध कराते रहती है। इस खानकाह, जिसे खानकाह-ए-रहमानिया के नाम से जाना जाता है, का अपना पुस्तकालय एवं प्रकाशन संभाग भी है।

1921 ई. में मौलाना शाह मुहम्मद अली मुंगेरी की मृत्यु हो गयी किन्तु उनका खानकाह एवं मदरसा आज भी पूरी बुलन्दगी के साथ मौजूद है और अपना काम कर रहा है। इनके पोते हजरत मौलाना वाली रहमानी इसके वर्तमान सज्जादानशीन है। इस खानकाह का यह सौभाग्य है कि महात्मा गांधी, खान अब्दुल गफ्फार खां, जवाहरलाल नेहरू, राजेन्द्र प्रसाद, इन्दिरा गांधी, राजीव गांधी, राहुल गांधी, ए.पी.जे. अब्दुल कलाम आदि जैसे नामचीन व्यक्तियों की हाजिरी प्राप्त है।



खानकाह में आधुनिक शिक्षा ग्रहण करते छात्रे

## बेगूसराय



बेगुसराय जिला के बलिया में शतारिया सिलसिला का एक खानकाह आज भी काफी लोकप्रिय है। इस खानकाह की स्थापना 1494ई.में हजरत मखदूम सैयद शाह अलाउद्दीन शतारी ने की थी। वे मध्य-एशिया के बुखारा से अपने परिवार के साथ इस क्षेत्र में आये और यहां मौजूद एक मस्जिद में उन्होंने पनाह ली थी। इस प्रसिद्ध मध्यकालीन मस्जिद को 1291ई. में अलाउद्दीन खिल्जी ने बनवाई थी। आज यह शानदार मस्जिद खानकाह के हिस्से के रूप में मौजूद है और किन्तु इसकी स्थिति अच्छी नहीं है।

कहते हैं कि सैयद शाह अलाउद्दीन शतारी के उदार धार्मिक विचारों के कारण वहां पहले से मौजूद मुस्लिम समूह जिन्हें छावनी कहा जाता था, के साथ विवाद खड़ा हो गया। उन्होंने इस्लाम के रूढ़िवादी उपदेशों के आधार पर अलाउद्दीन को धमकी भी दी। सैयद शाह अलाउद्दीन ने छावनी समूह से कहा कि आप लोग सुरक्षित नहीं हैं, अपना ख्याल रखें। कुछ दिनों के बाद एक आश्चर्यजनक घटना घटी, उनकी छावनी राख में तब्दील हो गया। छावनी समूह के लोग पनाह के लिये आस-पास के बस्तियों में बिखर गये और अब स्थानीय लोगों के बीच इन्हें 'छेनी' समूह के लोगों नाम से जाना जाता है।

सूफी अलाउद्दीन मात्र 22 वर्ष की उम्र में यहां आये थे और लगभग 32 वर्षों तक यहां के लोगों के बीच अध्यात्म एवं सामुदायिक मुहब्बत की दरिया बहाते रहे। 1526ई. में इनकी इसी खानकाह में मृत्यु हो गई। आज भी यहां इनका परिवार के साथ मजार सुरक्षित है।

हजरत अलाउद्दीन शतारी के सातवीं पीढ़ी के बाद एक संत हजरत मसीहुद्दीन बुखारी की हस्तलिखित पुस्तक आज भी इस खानकाह में सुरक्षित है। इसके अलावा हजरत अलाउद्दीन शतारी की टोपी और खिर्कुआ को भी खानकाह के उत्तराधिकारियों ने सुरक्षित रखा है। इन सारी ऐतिहासिक सामग्रियों को उर्स के अवसर पर जनसामान्य के लिये दर्शनार्थ प्रदर्शित किया जाता है। मुस्लिम श्रद्धालुओं के साथ-साथ हिन्दू श्रद्धालु भी बड़ी संख्या में उर्स के अवसर पर यहां इकट्ठा होते हैं। हर समुदाय, जाति एवं सम्प्रदाय के लोगों का यहां आवागमन इस मजार पर मन्त्रों मांगने के लिए बना रहता है।



अलाउद्दीन शतारी तथा उनके परिवार का कब्र

## खगड़िया

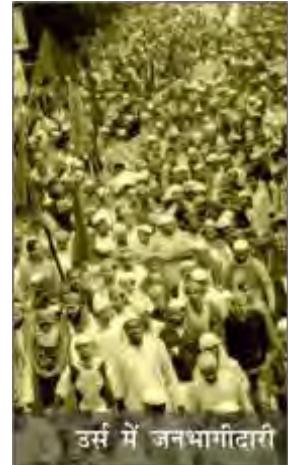


खगड़िया रेलवे स्टेशन से मात्र 500 मीटर की दूरी पर स्थित है हजरत शाह मेहदी हसन मुबारक फरीदी का मजार। इनका जन्म 1887 में मुंगेर में हुआ था। ये अपने बचपन में हजरत पीर शाह नफेय के मजार पर नियमित जाते थे। यह मजार मुंगेर के किला के दक्षिण में अवस्थित था।

हजरत शाह मेहदी हसन ने आध्यात्मिक ज्ञान की लालसा में वैराग को धारण कर लिया। आप दरभंगा आ गये और यहां आप मौलाना मोहम्मद मुबारक हुसैन के मुरीद हो गये। आपने कादरिया, नकशबंदी और चित्ती सिलसिला के ज्ञान से सम्पूर्ण हुए। 1907 में आपने अपने आध्यात्मिक गुरु मुबारक हुसैन से खिलाफत ग्रहण किया और स्वतन्त्र रूप से जन-मार्ग दर्शन करने हेतु प्रस्थान कर गये। अंततः आप खगड़िया पहुंचे और यहाँ टाऊन पुलिस स्टेशन के पास आपने खानकाह-ए-मुबारकिया मेहदाबिया की स्थापना की। दुर्भाग्यवश इनकी मृत्यु मात्र 31 वर्ष की उम्र में 1918 में हो गई।

मेहदी हसन मात्र एक सूफी संत ही नहीं बल्कि एक अच्छे लेखक एवं कवि भी थे। आपने बिहार की सूफी परम्परा एवं आध्यात्मिक परम्परा पर कई उपयोगी पुस्तकों की रचना की। आपकी रचित कविताएँ आज भी खानकाह-ए-मुबारकिया-मेहदाबिया के मदरसे के पाठ का हिस्सा है। आज इस मदरसा में इस्लामिक एवं सूफी शिक्षा के अतिरिक्त जन-सामान्य हेतु अंग्रेजी माध्यम का एक स्कूल का संचालन मेहदी स्मृति अकादमी द्वारा किया जा रहा है।

इस्लामिक माह, शबन के 27 एवं 28 तारीख को इस उल्लेखनीय सूफी संत के उर्स का वार्षिक आयोजन किया जाता है। इनके उर्स में न सिर्फ हजारों स्थानीय श्रद्धालुओं का जमघट लगता है बल्कि पाकिस्तान, बंगलादेश समेत पूरे उत्तर भारत से लोगों की उपस्थिति दर्ज होती है। यह मजार हिन्दू और मुस्लिम समुदाय के बीच समान रूप से आस्था का केन्द्र है और खामोश रहकर भी साम्प्रदायिक सद्भाव व मिलन का ऐतिहासिक सिलसिला क्रमबद्ध जारी रखता है।



उर्स में जनभासीदारी

# पूर्णिया



पूर्णिया की पहचान भारत के मध्यकालीन एवं उत्तर मध्यकाल के एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थल के रूप में रहा है। इसे पूर्वोत्तर भारत तथा बंगाल का प्रवेश द्वारा भी समझा जाता रहा है। चूंकि उत्तर भारत को पूर्वोत्तर भारत (असम, सिक्किम, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश, त्रिपुरा, नागालैंड, मणिपुर, मिजोरम, झूटान आदि) से जोड़ने वाला मुख्य मार्ग पूर्णिया से गुजरता है, इसलिए दिल्ली के शासकों एवं बंगाल के नवाबों के बीच इस पर नियंत्रण हेतु बराबर संघर्ष हुए। मुगलकाल में भी, पूर्णिया प्रशासनिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण केन्द्र बना रहा और लगभग यही स्थिति अंग्रेजी हुकुमत के दौर में भी बनी रही। पूर्णिया का महत्व व्यापारिक दृष्टिकोण से भी अत्यधिक था। यह शहर ऐतिहासिक रूप से एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र रहा है और आज भी यह नगर पूरे पूर्वी भारत में खासकर अनाज व किराना मंडी के कारण विख्यात है। चूंकि परम्परागत रूप से पूर्णिया प्रशासनिक क्षेत्र के अंतर्गत बर्तमान बिहार के कटिहार, किशनगंज, अररिया आदि जिले भी शामिल रहे हैं जो इसे एक ऐसे भूखंड का स्वरूप प्रदान करता है, जो एक तरफ गंगा से जुड़ता है तो दूसरी ओर नेपाल एवं बंगाल से। उत्तर आधुनिक काल के पूर्व तक, जब व्यापार एवं परिवहन के लिए नदी मार्ग ही अधिक उपयोग में लाया जाता रहा था, तब यह स्वाभाविक था कि इस भौगोलिक क्षेत्र की महत्ता अत्यधिक बन जाये।

जमालुल हक हजरत बंदागी मुगल काल के एक सुप्रसिद्ध सूफी थे। आप मूलतः उत्तर प्रदेश के जौनपुर से पूर्णिया आये थे किन्तु उसके पूर्व आपने पश्चिम बंगाल के पाण्डवा शरीफ की यात्रा की। इन्होंने पूर्णिया शहर के चिमनी में खानकाह-ए-आलिया मुस्ताफिया की स्थापना की। आपने जाति, धर्म एवं सम्प्रदाय से परे लोगों के कल्याण, जीवन-दर्शन एवं सही रास्ता के लिये आध्यात्मिक मिशन चलाया, यद्यपि यह मिशन अपने वृहद परिप्रेक्ष्य में इस्लाम के उदारवादी व्याख्या की पुनर्स्थापना थी। किन्तु जमालुल हक हजरत बंदागी बहुसंख्यक सूफी संतों की तरह मात्र उपदेशक नहीं बल्कि उनकी अंतःदृष्टि अपने उद्देश्यों के तहत व्यवस्थित संस्थानों की स्थापना करने के प्रति अधिक थी।

आज की तारीख में जमालुल हक हजरत बंदागी का मजार-परिसर पूर्णिया रेलवे स्टेशन से 8 कि. मी. उत्तर चिमनी बाजार में लगभग 100 एकड़ के विशाल भू-भाग में फैला हुआ है। इस परिसर में हजरत बंदागी का मजार के साथ एक खानकाह आलिया मुस्ताफिया, मदरसा-ए-दार उल उलूम मुस्ताफिया, एक ऐतिहासिक मस्जिद, बच्चों के छात्रावास के अतिरिक्त मुसाफिर एवं श्रद्धालुओं के कई



हजरत बंदागी के मजार का कब्र

अतिथिशालाएं मौजूद हैं पूरा परिसर आम, लीची तथा सेमल के पेड़ों के बागीचे से भरा है और इसके बीचोंबीच अवस्थित है - हजरत बंदागी का मजार। यह मध्यकालीन स्थापत्य का एक सुन्दर नमूना है। यहां श्रद्धालुओं के आने का तांता लगा रहता है जिसमें सभी धर्म, वर्ग एवं जातियों के लोग भागीदार होते हैं।

दारूल-उल्म मुस्ताफिया, इस्लामिक जीवन पद्धति एवं ज्ञान की शिक्षा का एक महत्वपूर्ण केन्द्र आज भी बना हुआ है। यहां पूर्णिया, कटिहार, किशनगंज, पश्चिम बंगाल

समेत दूर-दराज के इलाकों से शिक्षा ग्रहण करने छात्र आते हैं। यहां अधिकांश छात्र गरीब परिवारों से आते हैं तथा मुफ्त में शिक्षा, भोजन एवं आवास का आनन्द लेते हैं। इस मदरसे में फाजीलात स्तर, जो स्नातकोत्तर डिग्री के समकक्ष होता है, की शिक्षा दी जाती है। यहां अरबी एवं फारसी की उच्च स्तरीय शिक्षा की भी व्यवस्था है किन्तु नियुक्ति में ऐसे शिक्षकों की प्राथमिकता दी जाती है, जो बच्चों को समकालीन शिक्षा भी मुहैया करा सके।

मदरसा के दाहिने पक्ष में एक सुन्दर मस्जिद मौजूद है जो हजरत बंदागी के काल में निर्मित हुई थी। यद्यपि इस मस्जिद के वर्तमान भव्य स्वरूप को



खानकाह आलिया-मुस्ताफिया का प्रवेश द्वार

लगभग 80 वर्ष पूर्व खड़ा किया गया था, जिसमें प्रार्थना भवन के अतिरिक्त महिला एवं पुरुष श्रद्धालुओं के लिये अलग-अलग अतिथि भवन है। 'चिल्ला' यहां का एक परम्परागत आध्यात्मिक उत्सव है जो 40 दिनों तक चलता है और इस दरम्यान पुरुष एवं महिला श्रद्धालुओं से परिसर में मौजूद अतिथिशालाएं लबालब भरी रहती हैं।

## बेयसी

पूर्णिया जिला में एक अन्य महत्वपूर्ण सूफी संत सैयद शाह अज्मतुल्लाह चिश्ती की भी कर्म-भूमि रही है। इनकी दरगाह पूर्णिया जिला के बेयसी प्रखण्ड के बाजबेरिया गांव में अवस्थित है। किन्तु इनका मूल जन्मस्थान वैशाली जिला में अवस्थित बेलन दरगाह था। आप एक खानदानी सूफी संत थे। आपने ज्ञान प्राप्ति की लालसा में बंगाल के पाण्डवा शरीफ में अवस्थित खानकाह-ए-चिश्तिया-आलिया पहुंचे। यहां आपने नामचीन सूफी संत हजरत मखदूम-उल-आलम अलाउल हक पाण्डवीं का मार्गदर्शन एवं आध्यात्मिक



सैयद शाह अज्मुल्लाह चिश्ती का दरगाह, बाज बेरिया

शिक्षा व रोशनी प्राप्त की। आपने यहां खिलाफत प्राप्त की और मानव कल्याण एवं आध्यात्मिक मार्गदर्शन के लिये आप बाजबेरिया (पूर्णिया) आ गये और यहीं आपने खानकाह की स्थापना की।

कहते हैं कि आज से लगभग 550 वर्ष पहले सैयद शाह अज्मतुल्लाह चिश्ती की मृत्यु बाजबेरिया में स्थापित अपने खानकाह में हो गयी। प्रारम्भ में इनका मजार खुले आसमान के नीचे बिना समाधि निर्माण या मकबरे का था। बाद में श्रद्धालुओं के सहयोग से कब्र की समाधि एवं मकबरे का निर्माण किया गया। आज इनके मजार का मकबरा स्थापत्य का एक सुन्दर नमूना है।

हरे एवं उजले रंग का यह मजार दर्जन भर से अधिक मीनारों से सुशोभित है, जिसमें चार मीनारें काफी ऊँची हैं और कुतुब मीनार के तर्ज पर बनायी गई हैं। इन ऊँची मीनार के बीचों-बीच एक खूबसूरत गुम्बद है। गुम्बद के

आन्तरिक भाग में शीशों की ऐसी खूबसूरत नक्काशी की गई है कि वह शीशमहल-सा प्रतीत होता है। अन्दर एवं बाहर दोनों ही तरफ से स्थापत्य किसी भी प्रत्यक्षदर्शी को अपनी ओर आकर्षित करने में सक्षम है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह सब किसी बादशाह, हाकिम या जमीन्दार के सहयोग से नहीं बल्कि श्रद्धालुओं के सहयोग से खड़ा किया गया है जिसमें हिन्दू और मुस्लिम दोनों की समान भागीदारी थी।

इस दरगाह से जुड़ी कई चमत्कारी किंवदन्तियां स्थानीय स्तर पर लोकप्रिय हैं, जैसे— मजार का नियमित दर्शन करनेवाला एक लंगड़ा व्यक्ति पीर बाबा के आशीर्वाद से सामान्य आदमी की तरह हो गया, एक भिखरियांगे की गरीबी दूर हो गई, एक अंधे को रोशनी प्राप्त हो गई, एक असाध्य रोगी चंगा हो गया आदि-आदि, एक अत्यंत ही बूढ़ा आदमी चंगा व स्वस्थ हो गया ।

बाबा का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये सैयद शाह अज्मतुल्लाह चिश्ती के मजार पर प्रत्येक वृहस्पतिवार के दिन बड़ी संख्या में श्रद्धालुओं की भीड़ यहां ‘फतेहख्वानी’ के लिये इकट्ठा होती है। प्रत्येक वर्ष यहां दो दिन का उर्स का आयोजन धूम-धाम से किया जाता है जिसमें 2-3 लाख से अधिक लोगों की उपस्थिति दर्ज होती है और लगभग 15-20 हजार श्रद्धालुओं द्वारा चादर चढ़ाया जाता है। सामान्य तौर पर इस दरगाह का उर्स 22-23 फरवरी को प्रत्येक वर्ष मनाया जाता है। इस महत्वपूर्ण अवसर पर बंगलादेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल और उड़ीसा से भी लोग अपनी उपस्थिति दर्ज करते हैं। यहां उर्स का आयोजन बंगला कैलेंडर से फागुन माह में प्रत्येक वर्ष होता जो मौसम की दृष्टि से सबसे अच्छा एवं आनन्ददायक माना जाता है। इस खानकाह के द्वारा उर्स के लिए बंगला कैलेण्डर को इस्तेमाल करना इसके जन्म पक्षधरता का एक अच्छा प्रमाण है ।



# कटिहार



## रहमानपुर (बारसोई)

“ दू है आशिक, सबहा के जुन्नार तुझके एक है,  
तेय भजहब इश्क है और तेय मशरब इश्तेयाक। ”

ये पंक्ति मूल फारसी से अनुदित प्रसिद्ध सूफी संत, कई पुस्तकों के लेखक एवं विलक्षण प्रतिभा के धनी हजरत शाह हफीजुद्दीन लतीफी का है। प्रस्तुत पंक्ति न सिर्फ हजरत लतीफी के आध्यात्मिक व वैचारिक आधार का सार है बल्कि बिहार में चले सूफी आन्दोलन एवं सिलसिलों के मर्म की मुकम्मल व्याख्या प्रस्तुत करता है।

आपका जन्म सन् 1820 ई. के लगभग कटिहार जिला के रहमानपुर के निकट कन्हरिया नामक गांव में हुआ था। रहमानपुर कटिहार जिला के बारसोई अनुमंडल का एक ऐतिहासिक कस्बा है। इनके बचपन में ही पिता हुसैन अली का देहावसान हो गया था। यद्यपि आप धनवान पिता के इकलौते संतान थे, किन्तु आर्थिक एवं पारिवारिक कलह के कारण आपकी शिक्षा-दीक्षा कायदे से नहीं हो सकी। अंततः हजरत हफीजुद्दीन लतीफी को रहमानपुर छोड़ कर जाना पड़ा। ज्ञानार्जन के लिये आपने पटना, दिल्ली तथा कुछ अन्य जगहों पर पड़ाव डाले। शिक्षा एवं ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् मदरसा-ए-कबीरिया, सासाराम में आप एक शिक्षक हो गये। वहां से सेवानिवृत्त होने के बाद आप अपने गांव लौट आये और यहाँ खानकाह रहमानपुर तकिया शरीफ की स्थापना की।

जीवन में सादगी, तप व साधना मानो हजरत लतीफी की दिनचर्या थी। आपने अपने मुरीदों एवं श्रद्धालुओं की एक बड़ी जमात खड़ी की जिसका बुनियादी वसूल



हजरत हफीजुद्दीन लतीफी का मजार

था—“तू है आशिक, सबहा व जुन्नार तुझको एक है, तेरा मजहब इश्क है और तेरा मशरब इश्तेयाक ।” आपने सामाजिक सौहार्द एवं सम्प्रदायिक सद्भाव की एक ऐसी उर्वरक भूमि तैयार की जिसका विस्तार ना सिर्फ रहमानपुर या कटिहार तक सीमित था बल्कि बंगाल के कई पश्चिमी जिले, उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल के कई इलाके समेत बिहार के कटिहार किशनगंज, पूर्णिया, अररिया, छपरा, मुजफ्फरपुर, सासाराम, पटना आदि तक था, जहां आपके श्रद्धालुओं एवं मुरीदों की उपस्थिति मौजूद थी।

हजरत शाह हफीजुद्दीन लतीफी अरबी और फारसी के उच्च कोटि के विद्वानों में से एक थे। आपने अरबी एवं फारसी में एक दर्जन से भी अधिक पुस्तकों की रचना की जिसमें ‘लताएफ हिफजुस्सालेकीन’ शायद सबसे महत्वपूर्ण रचना है। इस पुस्तक में आपने अपने मुरीदों के मार्गदर्शक वसूल एवं मर्यादाओं को सुनिश्चित किया है। संभवतः ये मर्यादाएं और वसूल ही आपके सिलसिले को एक विशिष्ट स्थान प्रदान करते हैं। इस पुस्तक में आपने मुरीदों के लिये मार्गदर्शक-वसूलों को निर्धारित करते हुए सलाह दी है—“तुमको प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में परमात्मा से डरने, अल्पाहार लेने, अपराधों को छोड़ने, ब्रतों की निरन्तरता, नमाज की सदैवता, सदा आन्तरिक इच्छा को त्यागने, लोगों के अन्याय को सहन न करने तथा बुजुर्गों एवं



सदाचारियों के सानिध्य की वसीयत करता हूँ।”

हजरत लतीफी की अन्य पुस्तकों में ‘तिल्का अशरतुल कामिल’ भी एक महत्वपूर्ण रचना है। इसमें सूफीवाद के रहस्य मिलते हैं। ‘मकतूबाते लतीफी’ में भी सूफीवाद के बहुतेरे आयाम पर प्रकाश डाला गया है। हजरत लतीफी ने एक पुस्तक अरबी भाषा के व्याकरण पर भी लिखा है। ‘जरीसूब गैब’ में फारसी भाषा एवं व्याकरण पर प्रकाश डाला गया है। ‘वसीला अत्तसरीफ’ में भी हजरत ने फारसी व्याकरण पर प्रकाश डाला। हजरत हफीजुद्दीन लतीफी के सभी संकलनों में ‘मकतूबाते लतीफी’, लताएफ हिफजुस्सालेकीन’ और ‘दीवान ए लतीफी’ उल्लेखनीय किताबें हैं।

हजरत लतीफी ने यद्यपि ज्ञान प्राप्ति की अभिलाषा में कई जगहों की यात्रा की थी किन्तु उन्हें कोई मार्गदर्शक पीर नहीं मिला। उन्होंने खानकाह मुनएमिया, मीतन घाट, पटना सिटी में हजरत मखदूम मुनएम पाक की दरगाह पर हाजिरी दी। आप इस खानकाह के तत्कालीन गद्दीनशीन हजरत ख्वाजा लतीफ अली से प्रभावित होकर मुरीद हुए और खिलाफत ग्रहण किया। कालांतर में आप अबुल उलाई मुनएमी सिलसिले के एक महत्वपूर्ण सूफी (पीर) हुए। 1814 ई. में हजरत शाह हफीजुद्दीन लतीफी की मृत्यु अपने खानकाह में हुई। यह दरगाह आज सभी वर्गों, जातियों एवं सम्प्रदाय का श्रद्धा का केन्द्र बना हुआ है।

### पीर पहाड़ (मनिहारी)

कटिहार के मनिहारी रेलवे स्टेशन के उत्तर-पूर्व में एक अन्य प्रसिद्ध सूफी संत हजरत ख्वाजा सैयद जीतन शाह का मजार बेहद लोकप्रिय है। यह मजार गंगा नदी के रेत पर अवस्थित है। यह पूरा इलाका इतना खुला-खुला, एकांत एवं आबादी से दूर है कि प्रथम नजरिया में यह पिकनिक बनाने की जगह



सैयद जीतन शाह के मजार का प्रवेश-द्वार

साथ पिकनिक मनाते नजर आयें। ये अपना बैग, गठड़ी व सर सामग्री के साथ यहां पहुंचते हैं और अपने घर-परिवार से दूर यहां खेलने-कूदने, सामूहिक रूप से खाने-पीने और टहलने आदि का भी लुत्फ लेते हैं।

सैयद जीतन शाह का मजार एक 35 फीट ऊंचा टीले पर अवस्थित है। मजार और उसके परिसर तक पहुंचने के लिये 69 सीढ़ियों की ऊंचाई चढ़नी पड़ती है। यह इतना ऊंचा है कि स्थानीय स्तर पर इसे 'पीर पहाड़' के नाम से जाना जाता है।



उस के अवसर पर मजार पर चादरपाणी

नजर आती है। दरअसल यहां श्रद्धालु पीर बाबा की पूजा-अर्चना करने के साथ पिकनिक मनाने भी आते हैं। यहां कभी भी ऐसे कई श्रद्धालु देखे जा सकते हैं जो अपने परिवार या समूह के

सैयद जीतन शाह का जन्म कब और कहां हुआ था, इसकी सुस्पष्टता के लिये ऐतिहासिक प्रमाणिकता का बड़ा अभाव है। कहते हैं कि ये बुजुर्ग सूफी संत 13वीं सदी के उत्तरार्द्ध में अरब से पंजाब होते हुए मनिहारी (कटिहार) आये थे। यहां आपने आध्यात्मिक विमर्श

का अभियान चलाया और लोगों को न्याय एवं सौहार्द से सम्पृक्त राह पर चलने की सलाह दी। आपने कुरान की रूढिवादी व्याख्या को स्वीकार नहीं किया। हिन्दू एवं मुस्लिम दोनों ही सम्प्रदाय के लोग आपके मुरीद, अनुयायी तथा श्रद्धालु बने, जो सिलसिला आज तक बना हुआ है। आज भी यहां पूर्णिया प्रमण्डल के अतिरिक्त बंगलादेश, नेपाल, बंगाल तथा बिहार के अन्य हिस्सों से लोग पूरे दिन-रात यहां जीतन शाह का आशीर्वाद के साथ आनन्द लेने के लिये भी आते रहते हैं।

इस मजार का बड़े स्तर पर पुनर्निर्माण 1931 में राजा पी.सी. लाल (पूर्णिया) द्वारा कराया गया और 3 अप्रैल 1931 को इनके ही कर-कमलों के द्वारा मजार के इस भव्य रूप का उद्घाटन हुआ था, यह ऐतिहासिक रूप से प्रमाणित है। यद्यपि इस बात में दो मत नहीं कि सूफी संत सैयद जीतन साल का मूल कब्र या मजार लगभग 700 साल पहले का बना हुआ है। यह इस बात से भी प्रमाणित होता है कि जीतन शाह के अन्य मुरीदों में से एक मुरीद अतुल का भी एक कब्र यहां मौजूद है जो 1338 का बना हुआ है। उपर्युक्त बातें यह भी प्रमाणित करती हैं कि इस फकीर सूती संत के मुरीदों एवं अनुयायियों में एक अच्छी संख्या हिन्दुओं की भी थी।



सैयद जीतन शाह का कब्र

## नवादा



### पटना-राँची मार्ग

नवादा में पटना-राँची मुख्य मार्ग पर हजरत सैयद शाह जलालुद्दीन बुखारी का मजार और रामभक्त हनुमान जी का मन्दिर एक ही साथ मौजूद है। इससे परेशानी न कभी हिन्दुओं की हुई और न ही मुसलमानों को ही, बल्कि साम्प्रदायिक सौहार्द के प्रतीक के रूप में उसका समन्वित अस्तित्व वर्षों से बना हुआ है। शुक्रवार के दिन

बाबा के मजार पर यहां के हिन्दू व मुस्लिम सम्प्रदाय के लोग चादर चढ़ाकर मन्त्रों मांगते हैं। वहीं प्रत्येक मंगलवार को हनुमान मन्दिर में भक्तों की अपार भीड़ देखी जा सकती है। वैशाख शुक्ल पक्ष के अक्षय तृतीया को प्रत्येक वर्ष मन्दिर का स्थापना दिवस मनाया जाता है, वहीं पीर बाबा के मजार पर प्रत्येक वर्ष वार्षिक उर्स का आयोजन होता है। अजमेर शरीफ के उर्स के तुरंत बाद पीर बाबा के मजार पर विशाल उर्स हर साल मनाया जाता है।



हजरत जलालुद्दीन बुखारी का मजार

### खुर्जा बाजीदपुर (काशीचक)

नवादा जिला के काशीचक प्रखण्ड के खुर्जा बाजीदपुर में वरसी सिलसिले का या एक महत्वपूर्ण केन्द्र है। यद्यपि यह सिलसिला लोकप्रियता व विस्तार के दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण स्थान नहीं बन सका, किन्तु इसने बिहार के सूफी आन्दोलन को एक नई ऊर्जा जरूर प्रदान की। वरसी सिलसिले के अनुयायी न सिर्फ भारत के विभिन्न हिस्सों से बल्कि पाकिस्तान, बंगलादेश, नेपाल, अफगानिस्तान, अरब, इंग्लैंड आदि देशों से भी यहां आते हैं।

सौ साल पुरानी इस सुन्दर-सी उजली मस्जिद के परिसर में सैयद जहूर शाह वरसी का मजार मौजूद बिहार में सूफी आन्दोलन /104



फजीहत शाह वरसी का मजार और मस्जिद

है। आप लोकप्रिय रूप में फजीहत शाह वरसी के नाम से विख्यात हुए। आप वरसी सिलसिले के महान् सूफी संत हाजी वारीस अली शाह के समकालीन थे। वारीस अली शाह का कब्र उत्तर-प्रदेश के बाराबंकी जिला के देवा शरीफ में मौजूद है। नवाद जिला के खुर्जा बाजीदपुर में सुन्दर अजली मस्जिद के साथ मौजूद जहूर शाह वरसी का मजार एक घनी आबादी के बीच मौजूद है। किन्तु इस शान्तिप्रिय व सुसभ्य आबादी ने अपने प्रिय पीर को आज भी अपने दिलो-दिमाग में ऊँचा स्थान दे रखा है।

इस दरगाह का वार्षिक उर्स इस्लामिक महीने 'जिल-हिज्जा' के 28वें दिन पर आयोजित होता है। वार्षिक उर्स पर बड़ी संख्या में इकट्ठे लोगों में ऐसे

लोगों की भी एक अच्छी संख्या होती है जिनकी आस्था व विश्वास भले ही इस मजार तथा इससे सम्बद्ध सूफी के प्रति न हो, किन्तु उर्स के मेले या उत्सव के जश्न का लुत्फ वे जरूर लेना चाहते हैं।

### कुहिला (अकबरपुर)

इसी प्रकार नवादा जिले के अकबरपुर प्रखण्ड के कुहिला गांव में हिन्दू-मुस्लिम समन्वित संस्कृति का एक अन्य उदाहरण देखने को मिलता है। यहां 19वीं शताब्दी के तथा वरसी सिलसिले से सम्बद्ध सूफी अब्दुल्ला शाह वारसी, जो वरसी सिलसिले के प्रवर्तक हाजी हाफिज सैयद वारीस अली शाह के मुरीद थे, का मजार मौजूद है। कहते हैं कि पण्डित श्याम लाल मिश्र, जिन्हें अनवर शाह के नाम से भी जाना गया, अब्दुल्ला शाह वारसी के एक अभिन्न शिष्य थे, का स्मारक भी यहां मौजूद है। इस मजार का प्रत्येक वर्ष मनाये जानेवाले दो दिवसीय उर्स के अवसर पर जहां अकीदतमंदों के द्वारा चादरपोशी की जाती है, वहां हिन्दू विधि-विधान से पूजा, मुण्डन, मांगलिक गीत, भजन-कीर्तन, झूमर आदि का भी आयोजन एक साथ होता है। कब्वाली एवं सूफी गीतों के साथ-साथ पण्डित श्याम लाल मिश्र रचित भजन "प्रेम विनोद" का सस्वर पाठ भी होता है। इस "मड़ही पूजा समारोह" को हिन्दू-मुस्लिम समुदाय के लोग मिलकर आयोजित करते हैं। इस अवसर पर दोनों ही समुदाय के लोगों की उत्साहवर्द्धक भीड़ इकट्ठा होती है।

चिश्ती सिलसिले के सूफियों में एक प्रसिद्ध पीर हजरत ख्वाजा सैयद कुतुबुद्दीन मौजूद चिश्ती के बंशज भी बिहार पधारे और वे आज भी यहां आबाद हैं। नवादा जिला के शेखपुरा खुर्द नरहट में इन बुजुर्गों का खानकाह और दरगाह आज भी मानवता की सेवा तथा प्रेम का संदेश दे रहा है। इस परिवार में हजरत ख्वाजा सैयद ताज महमूद हक्कानी बड़े ऊँचे स्तर के पीर हुए।

## समस्तीपुर



समस्तीपुर रेलवे जंक्शन के निकट रेलवे लाइन के बगल में मखदूम जलाल पीर चिश्ती का मजार (अस्ताना) मौजूद है। इस मजार के पश्चिम से मुजफ्फरपुर-ताजपुर सड़क तथा पूर्ब से बरौनी से आनेवाली सड़क गुजरती है। एक किंवदन्ती के अनुसार, जब अंग्रेजी हुकूमत के समय यहां रेलवे ट्रैक

बिछाई जा रही थी तो यह मजार रेलवे ट्रैक के बीचबीच पड़ जा रहा था। उस समय यह जगह वीरान थी और आबादी यहां आस-पास नहीं बसी हुई थी। दिन में यहां काम करनेवाले मजदूर मजार के ऊपर से रेलवे ट्रैक बिछा कर चले जाते थे और रात में यह ट्रैक स्वतः बिखर जाती थी। ब्रिटिश चीफ इंजीनियर खुद यहां आये और ट्रैक बिछाने की तकनीकी गड़बड़ी तथा प्रक्रिया की खामियों की बहुत खोजबीन की गई, किन्तु उन्हें कुछ पता नहीं चल सका। कहते हैं कि एक रात ब्रिटिश चीफ इंजीनियर की नींद में सूफी जलाल पीर चिश्ती ने दर्शन दिया और कहा कि तुम अपना ट्रैक मेरे मजार से दूर ले जाओ क्योंकि मैं यहां बहुत दिनों से सो रहा हूँ। तुम मुझे तंग न करो। अंततः रेलवे ट्रैक को मजार से हटा कर थोड़ी दूर से ले जाना पड़ा और तब ही इसे सफलतापूर्वक बिछाया जा सका।

कहते हैं कि 14वीं सदी में जब मखदूम जलाल पीर चिश्ती की यहां मृत्यु हुई तो उनका मजार कच्ची मिट्टी व ईंट का एक अत्यन्त साधारण-सा ढांचा या यों कहें कि टीला मात्र था। 17 वीं सदी तक लगभग यही स्थिति बनी रही। किन्तु कालान्तर में इनके श्रद्धालुओं एवं उपासकों ने अपने प्रिय पीर की



उस के अवसर पर मजार की सज्जा एवं चादरपोशी



मखदूम जलाल पीर चिश्ती का कब्र

राज किया। कहते हैं कि उन्होंने आमजनों की सेवा के लिये अपने जीवन को समर्पित कर रखा था। उनके पास से कोई भी अधिवर्चित भूखा नहीं जा सकता था। एक किंवदन्ति के अनुसार, पीर अपने खाना का अधिकांश फकीरों को खिला देते थे जो बचता उसका आधा खुद खाते और आधा पछियों को खाने के लिये छोड़ देते थे।

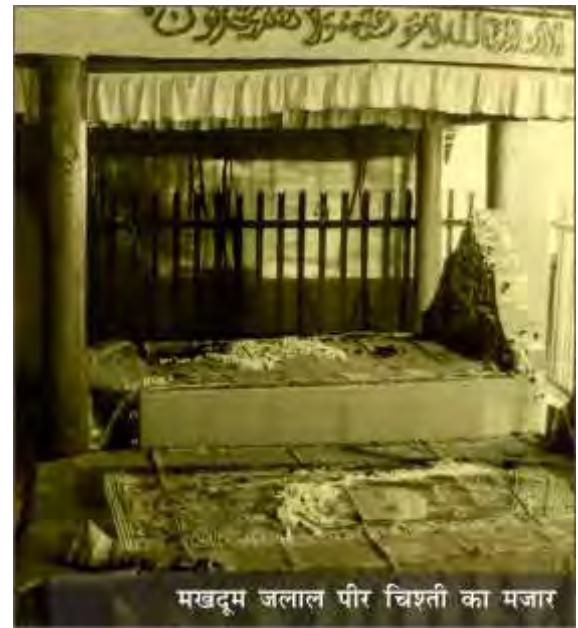
मखदूम जलाल पीर चिश्ती ने मानवीय सद्भाव एवं सर्वहिताय का जो सिलसिला समस्तीपुर के उक्त पावन भूमि पर शुरू किया, वह इनके मजार के मार्फत कमोवेश आज भी जारी है। मजार प्रबन्ध समिति भी बिना धार्मिक या जातीय भेदभाव के गरीब जनों को यथासंभव मुफ्त में खाना, कपड़ा आदि मुहैय्या कराते रहती है। स्थानीय लोगों के द्वारा भी इस मजार को सम्मानजनक

याद में यहां एक कायदे का मजार बनाया। इस मजार परिसर के अन्दर मखदूम जलाल की कब्र के बगल में एक अन्य सूफी संत अहमद फरीदी का भी कब्र मौजूद है जो जलाल पीर चिश्ती के मित्र थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि मखदूम जलाल को अभिजात्य या शाही इनायत प्राप्त नहीं हुई किन्तु उन्होंने आमजनों के दिलों दिमाग पर

सहयोग प्राप्त होता रहा है। कुल मिलाकर यह मजार सामाजिक सद्भाव के सक्रिय प्रतीक के रूप में आमजनों के बीच अपना अस्तित्व बनाये रखा है।

इस्लामिक कैलेंडर के तीसरे माह अर्थात् रबी-उल-अब्बाल में 20 से 22 तक अर्थात् तीन दिनों के उर्स का आयोजन यहां प्रति वर्ष होता है। इस अवसर पर न सिर्फ बड़ी संख्या में स्थानीय लोगों की भागीदारी होती है बल्कि नेपाल, बंगाल, उत्तर प्रदेश, बंगलादेश आदि से भी श्रद्धालु जियारत करने हेतु अपनी उपस्थिति दर्ज करते हैं। उर्स के अवसर पर 'कुरानखानी', 'चादरपोशी' आदि जैसे आध्यात्मिक-धार्मिक गतिविधियाँ की जाती हैं। इस अवसर पर यहां 'महफिल-ए-समां' का आयोजन बड़ा जानदार होता है। देश के कई नामचीन कब्बाल अपनी मण्डली के साथ भागीदारी निभाते हैं और इनमें से कई कब्बाल पार्टी तो कार्यक्रम करने के एवज में कोई वित्तीय सहयोग भी नहीं लेती है। तीन दिनों का यह उर्स का कार्यक्रम स्थानीय लोगों के लिये एक उत्सव-सा होता है जिसमें जितनी भागीदारी मुसलमानों की होती है, उससे कहीं अधिक हिन्दु अपने प्रिय पीर की याद में उनके उर्स में भागीदार बनते हैं।



मखदूम जलाल पीर चिश्ती का मजार

## सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

- |                           |   |   |                         |   |  |
|---------------------------|---|---|-------------------------|---|--|
| 1. अल-कुशायरी             | : | प्रिंसिपल्स ऑफ सूफिज्म                              | 17. मिल, जेस्प          | : | हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इण्डिया                            |
| 2. अहमद, अजीज             | : | स्टडीज ऑफ इस्लामिक कल्चर इन द इण्डियन<br>इंवायरमेंट | 18. निजामी, के. एच.     | : | मध्यकालीन भारत   |
| 3. अर्बेरी, ए. जे.        | : | सूफीज्म   | 19. पॉल जेक्सन, एस. के. | : | द वे ऑफ ए सूफी : शरफुद्दीन मनेरी                       |
| 4. अशरफ, के. एम.          | : | लाइफ एण्ड कन्डीशन ऑफ द पीपुल्स ऑफ<br>हिन्दुस्तान    | 20. पॉल जेक्सन, एस. के. | : | शरफुद्दीन मनेरी : द हंड्रेड लेटर्स                     |
| 5. अस्करी, प्रो. एच.      | : | कॉलेक्टेड वर्क्स                                    | 21. पॉल जेक्सन, एस. के. | : | बिहार्स मकदूम साहिब : शरफुद्दीन मनेरी                  |
| 6. अहमद, जेड.             | : | ए डिक्सनरी ऑफ इस्लाम                                | 22. रिज्वी, एस. ए. ए.   | : | ए हिस्ट्री ऑफ सूफिज्म इन इण्डिया, खण्ड-I<br>और खण्ड-II |
| 7. अहमद प्रो. इम्तियाज    | : | मध्यकालीन भारत : एक सर्वेक्षण                       | 23. राधेश्याम (डॉ.)     | : | मध्यकालीन भारत की सांस्कृतिक संरचना                    |
| 8. ओझा, एन. एन. (सं.)     | : | क्रॉनिकल बिहार दिग्दर्शिका                          | 24. स्पेंसर, जे.        | : | द सूफी ऑर्डर इन इस्लाम                                 |
| 9. फारूकी, एस. ए.         | : | ए. कम्प्रीहेंसिव हिस्ट्री ऑफ मेडाइवल इंडिया         | 25. सिंह, महेश विक्रम   | : | भक्ति एण्ड सूफी मूवमेंट                                |
| 10. गुप्ता, संजय (सं.)    | : | सूफिया-ए-बिहार                                      | 26. ताराचन्द            | : | इन्फ्लुएंस ऑफ इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर                  |
| 11. हेरी, मुनीरा          | : | द चिश्तिस   | 27. तिवारी, रामपूजन     | : | सूफी मत साधना और साहित्य                               |
| 12. हबीब, इरफान           | : | मध्यकालीन भारत (खण्डों में प्रकाशित)                | 28. थापर, रोमिला        | : | इतिहास की पुनर्व्याख्या                                |
| 13. हुसैन, युसूफ          | : | मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति                           | 29. ट्रॉल, क्रिस्टियान  | : | मुस्लिम शरींस इन इण्डिया                               |
| 14. कुमार, डॉ. विजय (सं.) | : | बिहार में सूफी परम्परा                              |                         |   |  |
| 15. कार्ल, डब्ल्यू. ई.    | : | इंटररल गार्डेन                                      |                         |   |  |
| 16. लवरेंस, ब्रुस         | : | सूफी मार्ट्यर्स ऑफ लव                               |                         |   |  |

## लेखक परिचय



डॉ० अभय कुमार पाण्डेय पेशे से एक सामाजिक अभिकर्ता एवं शोध—कर्मी रहे हैं। इन्होने सन् 2000 में इतिहास विषय से स्नातकोत्तर किया तथा 2008 में “भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में मजदूर वर्ग का योगदान” शीर्षक पर पी.एच.डी की उपाधि धारण की। 2001 से 2014 के बीच अर्थात् 14–15 वर्षों तक आपने बच्चों की शिक्षा के विषय पर सतत् काम किया। इस दरम्यान डॉ० पाण्डेय यूनिसेफ, बिहार शिक्षा परियोजना, ईस्ट एण्ड वेस्ट एड्युकेशनल सोसायटी, पूर्वांचल आदि संस्थाओं से जुड़कर कई परियोजनाओं में काम किया। स्कूली शिक्षा से अभिवंचित बच्चों के लिये आपने 2005 में एक अत्यंत उपयोगी प्राइमर अड्डोस—पड्डोस लिखा। इसके पूर्व आपके द्वारा स्कूली बच्चों के लिये दो पुस्तकें पंचामृत तथा इतिहास कथा लिखी जा चुकी थीं।

2007 में डॉ० अभय कुमार पाण्डेय द्वारा “मार्गदर्शिका : पंचायत स्तर से प्रारम्भिक शिक्षा योजना निर्माण प्रक्रिया” नामक पुस्तक लिखी गई। यह पुस्तक सर्व शिक्षा अभियान के बिहार प्रसंग हेतु योजना निर्माण के लिये अत्यंत महत्वपूर्ण बनी। इसके अतिरिक्त BCF (SCERT), Exclusion in Education (E&W Society) तथा बिहार शिक्षा परियोजना के नवाचारी एवं वैकल्पिक शिक्षा केन्द्रों के लिये कई पुस्तकों के निर्माण में आपकी सक्रिय सहभागिता रही।

2011 में डॉ० अभय कुमार पाण्डेय को आई०सी०एच०आर० से पोस्ट डॉक्टरल फेलोशिप प्राप्त हुआ और उन्होंने “बीसवीं सदी के बिहार में निम्न जातियों की राजनैतिक सामाजिक चेतना का विस्तार” के शीर्षक पर अपना शोध कार्य सम्पूर्ण किया। डॉ० पाण्डेय स्वतंत्र रूप से हिन्दी पत्रकारिता से भी जुड़े रहे हैं और इनके आलेख, समीझा, रिपोर्ट्स, कविताएं आदि समयान्तराल पर छपते रहे हैं। आप बिहार सरकार के योजना एवं विकास विभाग से एक शोध—विशेषज्ञ के रूप में 2015 से 2018 तक जुड़े रहे। आपने भोजपुरी अकादमी, बिहार से जुड़कर बिहार विरासत विकास समिति के लिये लोक कथाओं के संग्रहण का कार्य वर्ष 2018–2019 में सफलतापूर्वक सम्पादित किया है। वर्तमान में डॉ० पाण्डेय पूर्वांचल लोक उत्थान एवं शोध परिषद् के सचिव के रूप में सक्रिय है।



कला संस्कृति एवं युवा विभाग, बिहार सरकार के सहयोग से  
पूर्वांचल लोक उत्थान एवं शोध परिषद् द्वारा प्रकाशित

